1947-उपरात भारत
का
सामाजिक यथार्थ

एक ऐतिहासिक विश्लेषण

इतिहास मानव ज्ञान के दो मूल स्रोतो मे से एक है,
दूसरा प्राकृतिक विज्ञान है

सहयोग राशी 60 रु०

पता सी 5, डीपीसीआई क्वाटरस, ढक्का, दिल्ली 110009

इंटरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी के लिए और उसकी ओर से
आर०पी० सराफ द्वारा प्रकाशित
तथा मानस प्रिंटिंग प्रेस, गांधी नगर, दिल्ली में मुद्रित

प्रस्तावना

(1) इस लेख मे अपनी मनोगत और वस्तुगत सीमाओ के भीतर रहते हुए 1947 उपरात भारत के सामाजिक यथार्थ को समझने की कोशिश की गई है। इस मूल्याकन मे जहा कही त्रुटि रह गई हो, उस बारे मे सभी उचित सुझावो का हम तहे-दिल से स्वागत करेंगे और उस पर अमल करेंगे तथा अपनी गलतियो, कमियो व खामियो को सुधारेंगे। दुनिया मे कोई भी चीज तकदोष से परे नही होती, हालाकि जहा तक सभव हो पूर्णता या विशिष्ठता तक पहुँचने की कोशिशें की जा सकती हैं और की भी जानी चाहिए।

(2) इस लेख मे अभिव्यक्त समझ के समीक्षको से उम्मीद है कि वे इसे निम्न-लिखित कसौटी पर परखेंगे। एक तो यह कि इसम जो कुछ कहा गया है वह सही है या गलत, उचित है या अनुचित और यथार्थ के अनुरूप है या नही। दूसरे, यह कि इसमें की गई टिप्पणिया मनुष्य के नैतिक मानदडो के अनुरूप है या नही। मूल्याकन इसके किसी एक भाग तक सीमित नही होना चाहिए बल्कि इसके सभी भागो सहित समूचे लेख मे अभिव्यक्त समझ पर होना चाहिए। चहुमुखी जायजा लेना ही चीजो को परखने का ऐतिहासिक वैज्ञानिक ढग है।

(3) इस लेख म भूमिका के अतिरिक्त आठ अध्याय है। भूमिका मे इस दस्तावेज के दृष्टिकोण और विषयवस्तु की व्याख्या की गई है। अध्याय एक म 1947 के बाद के भारत की ऐतिहासिक पष्ठभूमि, शुरू से लेकर 1947 तक, बयान की गई है। अध्याय दो म 1947 के बाद की भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सामान्य लक्षणो का वणन है। अध्याय तीन मे 1947 के बाद के भारतीय राज्यतत्र का जायजा लिया गया है। अध्याय चार मे 1947 के बाद की भारतीय अथव्यवस्था का विश्लेषण है। अध्याय पाँच म 1947 के बाद की भारतीय सस्कृति का अवलोकन प्रस्तुत है। अध्याय छह म 1947 के बाद भारत की कूटनीति-सह-रक्षा नीति का मूल्याकन दज है। अध्याय सात मे 1945 के बाद की दुनिया का विवरण दिया गया है। अध्याय आठ मे दुनिया की सामाजिक इकाई के एक भाग के तौर पर भारत के आधुनिकीकरण की दीघकालीन और अल्पकालीन योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

(4) इस लेख को पूरा करने मे जिन आदरणीय मित्रो ने दुरुस्तियाँ, आलोचनाएँ, सुझाव, टाइपिंग, पाडुलिपि का मूल व सशोधित अध्ययन, कपोजिंग, प्रूफ रीडिंग, छपाई, भोजन व आवास मुहैया करके अलग अलग तरह से योगदान दिया है, मैं उन सभी का तहेदिल से आभारी हू।

(5) यह लेख मूलत तीन ऐतिहासिक सवालों का जवाब प्रस्तुत करता है। एक यह कि भारत मे फूट डालो और राज करो की नीति को चलाने वाले ब्रिटिश उपनिवेशवाद के दफा होने तथा मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तुत और राष्ट्रीय एकता की जड़ें खोदने वाले 'भारतीय मुस्लिम राष्ट्रवाद' के सिद्धात की रवानगी के 40 साल बाद भी साम्प्रदायिकता और जातिवाद भारत मे क्यो तबाही मचाए हुए हैं ? दूसरे, क्या वजह है कि भारतीय राष्ट्र राज्य की स्थापना के चार दशक बाद, एक परिवार की अगुआई मे एक ही पार्टी के लव और निरतर शासन के 38 साल बाद तथा समाजवाद लाने और गरीबी हटाने का लक्ष्य रखने वाली नियोजित आर्थिक प्रक्रिया के 37 साल बाद भी 40 फीसदी से अधिक भारतीय लोग आधा पेट ही भर पाते हैं, एक तिहाई बिना घर बार के हैं जिनमे शहरी बेघर पटरियो पर सोते और झुग्गियों म रहते हैं जबकि देहाती बेघर जानवरो सहित घासफूस के झोपडो मे बसर करते हैं, दो तिहाई लोग अनपढ हैं तथा करीब 20 लाख हर साल कुपोषण की वजह से मर जाते हैं ? तीसरा सवाल यह है कि आठ आम चुनावो सहित एक लबी ससदीय प्रक्रिया से गुजरने के बाद भी भारत का राष्ट्रीय चरित्र ऐसे राजनैतिक नेतृत्व के प्रति क्यो सहनशील है जो धन शक्ति व बाहुबल, जातिवाद और साम्प्रदायिकता के आधार पर खडा है तथा चुनाव प्रक्रिया का भ्रष्ट करने के लिए काले धन का इस्तेमाल करता है और फिर चुनाव खर्चों के बारे म मुख्य चुनाव आयुक्त के पास झूठा विवरण दाखिल करता है ? (राष्ट्र पति और प्रधानमत्री सरीखे ऊँचे पदो के लोग भी इस आचरण से परे नहीं)

(6) उपरोक्त तीन चीजो के बने रहने यानी साम्प्रदायिकता और जातिवाद का बोलबाला होने, दो तिहाई आबादी के लिए बेहद गरीबी जारी रहने तथा भ्रष्ट राजनतिक नेतृत्व के चलते रहने से क्या अभिप्राय है ? इसका सीधा सादा मतलब है कि मानवीय विचारो, व्यवहार और सगठन के मामले मे भारत के औद्योगिक आधुनिकी करण की प्रक्रिया जिस हद तक जरूरी और सभव है उस स्तर तक विकसित नही है।

(7) 1947 से पहले इन तीनो चीजो के बारे मे भारतीय लोगो की क्या समझ थी ? यह कि उपनिवेशी शासन की देन इन तीनो चीजो का खात्मा इस शासन के खत्म होने से ही होगा। इस तरह, गाँधी ने पूर्व घोषणा की थी कि ब्रिटिश उप निवेशी सरकार के खात्मे के बाद ही भारत में रामराज्य कायम होगा। नेहरू का पूर्वानुमान था कि उनका समाजवादी नियोजन भारत को एक अत्याधुनिक देश मे बदल डालेगा। पटेल का अनुमान था कि देश से 'भारतीय मुस्लिम राष्ट्रवाद' की रवानगी के बाद साम्प्रदायिकता और जातिवाद खत्म हो जाएगे।

(8) सत्ता सभालने के बाद (1971 मे) इदिरा गाँधी ने 10 साल के भीतर भारत से गरीबी खत्म करने का वादा किया। 1985 मे राजीव ने सावजनिक जीवन को पाक साफ बनाने का हलफ लिया।

(9) उपरोक्त घोषणाओ के विपरीत भारत आज भूटान और बागलादेश सहित दुनिया के 10 सबसे गरीब देशो की श्रेणी मे है और इस दर्जे म पाकिस्तान से

की सीमें है। यह दुनिया के सबसे कम उत्पादन दर वाले देशों में एक है। चीन ने 1950 के दशक में, 1970 के और दक्षिण कोरिया ने 1980 के दशक में इसे पीछे छोड़ दिया था। अब 1990 के दशक के शुरू में थाईलैंड, फिलीपीन और शायद पाकिस्तान भी इसे पछाड़ने की तैयारी कर रहे हैं। लेकिन बहुत से क्षेत्रों में तो भारत दुनिया भर का अगुआ है। आर्थिक तौर पर यह गरीबी, आर्थिक असमानताओं, बेरोजगारी, बढ़ते पूंजी/उत्पादन अनुपात, उत्पादन की ऊंची लागत, सामान की घटिया क्वालिटी, गैर-उत्पादक व्यय, अपव्यय, अकुशलता और सबसे बढ़कर काले धन के मामले में लगभग सभी देशों से आगे है। दरअसल, गरीबी और असमानता ने भारत को दुनिया का असाधारण अन्यायी राष्ट्र राज्य बना दिया है। सांस्कृतिक तौर पर यह भ्रष्टाचार, धांधली, चापलूसी, जी हुजूरी, चाटुकारिता, अपराध, हत्या, टीबी, मलेरिया, कुष्ठ-रोग आदि के मामले में दुनिया के अधिकांश देशों से आगे है। राजनीतिक तौर पर यहां करीब 38 साल से एक ही पार्टी और परिवार के शासन की अनूठी परंपरा रही है जिसका एकमात्र मकसद किसी भी तरह से सत्ता हथियाना और उससे चिपके रहना है। इसका संविधान सभी किस्म की सरकारी गतिविधियों में लोगों को शामिल किए जाने की आदर्शी करता है जबकि कार्यपालिका और अफसरशाही को (चुनाव के समय को छोड़कर) लोगों के प्रति जवाबदेही से छूट देता है।

(10) क्या कोई राष्ट्र इन लक्षणों के चलते विकास कर सकता है? किसी भी नजरिए से देखें, भारत की तस्वीर आज धुंधली नहीं तो उजली भी नहीं है। इसे किसी भी सूरत में राष्ट्र निर्माण की गाथा नहीं कहा जा सकता।

(11) इस कठोर यथार्थ की लीपापोती की कोशिश करते हुए कुछ निहित स्वार्थी अक्सर बार-बार ऐसे आंकड़े पेश करते हैं जिनमें भारत के कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों की वृद्धि को बढ़ा चढ़ाकर दिखाया जाता है। इस [illegible] की भी कोशिश की जाती है कि देश में जातीय, सांस्कृतिक और [illegible] विविधता तथा बाहरी तौर पर सैनिक और अर्द्ध सैनिक [illegible] के बावजूद भारत ने चार दशक तक संसदीय रिवाज कायम किया है। [illegible] उस समय औंधे मुंह गिरता है जब हम देखते हैं कि राजनीतिक, आर्थिक या सांस्कृतिक क्षेत्र में हुआ हर विकास पोषित सदस्यों से दूर [illegible] भारी कीमत चुकाने के बाद ही हासिल किया जा सका है। [illegible] भी बेहतर आर्थिक उपलब्धि पाने [illegible] ढांचे को बरकरार रखे हुए हैं।

अपनी गलतियो के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाने से हमेशा इनकार किया है। पार्टी ने 1916 की कांग्रेस लीग लखनऊ संधि (जिसमे मुसलमानो के लिए अलग मतदाता प्रणाली का समर्थन किया गया) और 1935 के साम्प्रदायिक पचनिर्णय (जिसमे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की बात दुहराई गई) को स्वीकार कर लेने को कभी खुलेआम अपनी गभीर गलतिया नही माना है। वह 1947 के साम्प्रदायिक विभाजन को अपनी हार मानने से अभी भी इनकार करती है। इसने नेहरू मार्का समाजवाद (जिसे लगभग 1964 मे धन सकेंद्रण के बारे में महालनोबिस समिति की रिपोर्ट ने पगु बना दिया), और नेहरू मार्का निर्गुटता (जिसे 1962 के चीन भारत युद्ध ने अपनी औकात बता दी), इंदिरा गाधी के गरीबी हटाओ कार्यक्रम (जिसका खडन 1970 और 1980 के दशक म हुए विभिन्न सरकारी सर्वेक्षणो म पाई गई उसी स्तर की गरीबी और आर्थिक असमानताओ तथा बढती बेरोजगारी से होता है) और राजीव की मि० क्लीन की छवि (जो बोफोर्स, फेयरफक्स आदि से खडित हुई है) की नाकामी को कभी स्वीकार नही किया है। इन सबसे पता चलता है कि इस पार्टी ने अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए यथार्थ को तोड मरोडकर अपनी कथनी और करनी मे फर्क डाला है।

(14) इस स्थिति से हम कैसे पार पाएँ? दरअसल, भारत के औद्योगिक आधुनिकीकरण की समस्या का यही केंद्रबिंदु है। यह समस्या निबटाने के लिए एक तो भारत के विज्ञान व टक्नोलॉजी को विकसित करने और दूसरे, उसके मानवीय विचारो सस्थानो और सागठनिक स्वरूपो को आधुनिक बनाने की जरूरत है। ये दोनो पहलू अतरनिर्भर हैं और एक के बिना दूसरे की पूर्ति नही हो सकती। कांग्रेस इ ने एक पहलू का पूरा करने (यानी भौतिक पक्ष का विकास करने) की कोशिश की है। पर उसे नाकामी ही हाथ लगी है। क्योकि साथ साथ मानवीय पूजी के विकास के बिना समाज मे भौतिक पूजी उन्नति नही कर सकती। दरअसल, अनुभव बताता है कि नेहरू मार्का व्यक्तिवादी एव परिणामवादी राजनीति मानवीय पूजी का विकास नही कर सकती क्योकि सैद्धातिक लोकतात्निक प्रक्रिया की तुलना मे यह जातिवाद और साम्प्रदायिकता के ज्यादा करीब है। पिछले 40 साल म यदि नेहरू मार्का व्यक्तिवादी एवं परिणामवादी राजनीति नाकाम रही तो उस जैसी कोई और किस्म भी कामयाब नही हो पाएगी। कोई दूसरा शार्टकट भी काम नही आने वाला। वदिककालीन हो या पौराणिक काल का अथवा जातिवादी, साम्प्रदायिक या राजतत्रीय किसी भी किस्म का पुनरुत्थानवाद आज सार्थक नही है भले ही अपने अपने युग म उनम हरेक न भारी भूमिका अदा की है। एक वक्त वह भी था जब उदारवादी अथवा मार्क्सवादी राष्ट्रीय विचार, सस्थान और सागठनिक स्वरूप औद्योगिक आधुनिकीकरण के अग्रदूत हुआ करते थ। पर आज वे भी अपना बहुत सी वधता खो चुके हैं। ऐसा इसलिए है कि वतमान वैज्ञानिक और टक्नोलाजिकल प्रक्रिया ने राष्ट्रीय सीमाए तोडकर विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयो का अतरनिर्भर बना दिया है। राष्ट्रीय इकाइयो के विघटन और राष्ट्रीय इकाई के उदय स राष्ट्रीय मॉडल बहुत हद तक निष्प्रभावी हो गए हैं।

यह बात विकसित पश्चिमी और समाजवादी दोनो देशो मे हुई हाल ही की घटनाओ से सिद्ध होती है। ये सभी देश नशे, बाल अपराध, मजदूरो की विमुखता आदि जैसी समान समस्याओ से दो चार हैं। आज अतरनिर्भर राष्ट्रीय इकाइयो या औद्योगिक आधुनिकीकरण न तो मार्क्सवादी राष्ट्रीय राज्य नियत्रण वाले माडल और न ही उदारवादी व्यक्तिपरक राष्ट्रीय मडी वाले मॉडल के जरिए हो सकता है। बल्कि यह काम गाँव से लेकर अतरराष्ट्रीय स्तर तक राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक प्रक्रियो मे लोकतात्रिक नियत्रण के सिद्धांतो पर आधारित अतरराष्ट्रीय लोकतात्रिक मॉडल के जरिए ही सभव है।

जितना अधिक लोकतत्रीकरण होगा, उतनी ही अधिक आर्थिक और सास्कृतिक उन्नति होगी। जब लोगो को किसी भी धारणा के बारे मे शका का समाधान करने की आजादी हो, तभी प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान तेजी से उन्नत होते हैं। इस सामान्य निष्कर्ष की पुष्टि मनुष्यजाति के समूचे इतिहास और खासकर 18 वी से 20 वी सदी के बीच के इस इतिहास से होती है जब जनता की सामाजिक सृजनात्मकता ने पिछले सारे रिकाड मातकर अथाह सामाजिक और प्राकृतिक ज्ञान अर्जित किया।

आर० पी सराफ

31 दिसबर 1988

विषय-सूची

भूमिका

अध्याय पांच भारतीय सस्कृति

अध्याय छह भारतीय कूटनीति-सह रक्षा नीति

भूमिका

यह 1947 उपरात भारत के सामाजिक यथाथ के मूल्याकन का एक और प्रयास है। समकालीन भारत के बारे मे अनेक सामाजिक विश्लेषण पहले ही मौजूद हैं तो नए मूल्याकन की क्या जरूरत है ? इसकी एकमात्र वजह यह है कि भारत के सामाजिक यथाथ के बारे मे हमारा मूल्याकन विद्यमान सामाजिक विश्लेषणो से भिन्न है। यह बात हमारे सामाजिक विश्लेषण के निम्न प्राकल्पो से स्पष्ट है।

1 हमारे कुछ प्राक्कल्प

(क) यह कि 1947 मे भारत का साप्रदायिक विभाजन ऐतिहासिक दष्टि से अनिवाय नही था, राजनैतिक तौर पर इसे टाला जा सकता था और भारतीय लोगो को इसकी बहुत भारी कीमत चुकानी पडी। इसमे 10 लाख लोग मारे गए, 40 लाख घायल हुए और 250 लाख को अपनी जायदाद से महरूम होना पडा। दुनिया के किसी भी पैमाने से यह बेमिसाल कीमत थी।

(ख) यह कि 1947-उपरात भारत की सामाजिक व्यवस्था पश्चिमी उदारवाद, रूसी अथवाद और धर्मोन्मुख धमनिरपेक्षता का घालमेल रही है।

(ग) यह कि 1947-उपरात भारतीय राज्यतत्र ब्रिटिश उपनिवेशी राज्यतत्र की तुलना मे विकसित होने के बावजूद अति केंद्रीयकृत सविधान वाला राज्यत और दमनकारी नीतियो वाला निरकुश शासन रहा है जिसने किसी भी राजनैतिक मानदड के विपरीत भारतीय जनता से बहुत भारी कीमत बटोरी है। (मसलन इसके तहत सेना और पुलिस की फायरिंग मे मरे करीब 40 000 और घायल हुए लगभग 1,20,000, पजाब और दूसरी जगहो पर अदरूनी सशस्त्र सघर्षों मे मरे करीब 50,000 और घायल हुए लगभग 1,00,000 तथा साप्रदायिक दगा मे मरे करीब 20,000 और घायल हुए लगभग 40 000 लोगो समेत कुल मिलाकर करीब 1,10 000 लोग मारे गए और लगभग 2,60,000 घायल हुए हैं—देखें अध्याय तीन, उपशीषक 13)।

(घ) यह कि 1947-उपरांत भारतीय अथव्यवस्था एक तरफ अपने नियोजित आर्थिक लक्ष्यो को हासिल करने म दूर पीछे रही है और दूसरी तरफ अपने नियोजित आर्थिक उद्देश्यो को पाने मे नाकाम रही है। इस तरह वह विश्व स्तर या तीसरी दुनिया के किसी भी आर्थिक मापदड की कसौटी पर खरी नही उतरी और उसने माली व जानी लिहाज से भारतीय लोगो को अनावश्यक नुकसान पहुँचाया है (मसलन इसके तहत एक साल मे गरीबी या कुपोषण से करीब 20 लाख मौतें होती हैं, नियोजित लक्ष्यों की पूर्ति न होने से करीब 3,33,334 करोड रुपये और पूँजी/उत्पादन के

अनुपात मे वद्धि से करीब 5,43,000 करोड रुपए का घाटा हुआ है—देखें अध्याय चार, उपशीर्षक 10 क, 10 ख और 11) ।

(ङ) यह कि 1947-उपरात भारतीय सस्कृति ने एक तरफ सभी किस्म की कट्टरता खासकर बहुसख्यक समुदाय की कट्टरता को चिरस्थायी बनाया है और दूसरी तरफ आधुनिक व पारपरिक सस्कृति के निकृष्ट रूपो (जैसे जी हुजूरी, चाटुकारिता, झूठ, तिकडम, चुगलखोरी, पक्षपात, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, तस्करी, कर चोरी, चोरी, गुडागर्दी आदि) को बढावा दिया है। इस तरह उसने भारतीय जनता से भारी कीमत वटोरी है (मसलन इसके तहत करीब 5,00 000 गिरफ्तारिया और करीब 4 00 000 लोगो की हत्याएँ हो चुकी है—देखें अध्याय पाँच, उपशीर्षक 5) ।

(च) यह कि 1947 उपरात भारतीय कूटनीति सह रक्षा नीति की दिशा दक्षिण एशिया मे भारत का क्षेत्रीय प्रभुत्व जमाने की रही है जिसकी कीमत भारतीय जनता को अनावश्यक युद्धो मे जान व माल की कुरबानियाँ देकर चुकानी पडी है (मसलन भारत द्वारा लडे गए चार युद्धो म करीब 13,000 लोग मारे गए और लगभग 30 000 घायल हुए हथियारो की होड और चार युद्धो मे खरवो रु० का माली नुकसान हुआ है—देखें अध्याय छह, उपशीर्षक 7) ।

(छ) यह कि 1945 उपरात विश्व, जिसमे भारत भी शामिल है, लगातार अतरनिभर राष्ट्र राज्यो के एक अतरराष्ट्रीय तत्र के रूप मे विकास पा रहा है। इस तरह अतरनिभर दुनिया की समस्याओ का हल करने म सभी प्रकार के पारपरिक राष्ट्रीय माडल (यानी पश्चिमी उदारवादी, रूसी समाजवादी और मिश्रित अल्प-विकसित) अप्रासंगिक होते जा रहे हैं।

(ज) यह कि भारत के आधुनिकीकरण के लिए दीर्घकालीन और अल्पकालीन पर्गों समेत कोई भी योजना इन्ही प्राकल्पो पर आधारित होनी चाहिए। आधुनिकीकरण से अभिप्राय टेक्नोलाजिकल विकास, लोकतत्रीकरण और सामाजिक न्याय है।

2 हमारी प्रेक्षण विधि

(क) उपरोक्त सभी सामाजिक प्राकल्प प्रेक्षणीय प्रमाण पर आधारित हैं (उन्ह आँकडो, तथ्य यथार्थ अथवा विज्ञान की कसौटी पर परखा जा सकता है)।

(ख) प्रमाण जुटाने के प्रेक्षण काय मे हमारा रुख यह रहा है कि यहाँ तक व्यवहार्य हो सके शोध प्रक्रिया का यह हिस्सा निष्पक्ष रहे और उसे पूव निर्धारित धारणाओं से मुक्त रखा जाए।

(ग) जुटाए गए प्रमाण की व्याख्या करन म हमारा रुख यह रहा है कि शोध प्रक्रिया के इस हिस्से के प्रति हम निष्पक्ष या तटस्थ नही हो सकते। क्योकि हर मनुष्य किसी घटनाक्रम की व्याख्या अपने सैद्धातिक और व्यावहारिक ज्ञान के भडार (यानी यथाथ की अपनी आम धारणा के साथ साथ यथार्थ की विभिन्न प्रक्रियाओं के बारे मे अपनी विशिष्ट धारणाओं) के आधार पर कर सकता है। मानवीय मनोविज्ञानी

कायशैली से जुडे इस मानदड से हम भी नही बच सकते ।

(घ) इस तरह समूची शोध प्रक्रिया मे हमने प्रमाण (जो तटस्थ और मूल्यो से मुक्त हो सकता है) और प्राक्ल्प अथवा कथन (जो किसी हद तक मूल्यो पर आधारित ही हो सकता है) के बीच अतर किया है।

3 विश्लेषण की हमारी सामान्य विधि

(क) विश्लेषण विधि और कम के मागदशक के रूप मे हम इन मा यताओ को स्वीकार नही करते कि सामाजिक विकास एक निश्चित ढर्रे पर चलते हुए अपरिहाय लक्ष्य की ओर ले जाता है (निश्चयवाद), अथवा सामाजिक विकास अज्ञात शक्तियो द्वारा पूव निर्धारित होता है (भाग्यवाद), अथवा मानव व्यवहार पूरी तरह स्वतत्र इच्छा द्वारा निर्धारित होने के कारण सामाजिक विकास के बारे म कुछ निश्चित नही कहा जा सकता (स्वेच्छावाद), अथवा सपूण एकतरफा तौर पर अपने भागो के गुण निर्धारित करता है (सामा यवाद), अथवा व्यवहार हमेशा अगुआ और सिद्धात गौण भूमिका अदा करता है(इद्रियानुभववाद), अथवा दशन की कोई उपयोगिता नही होती (वस्तुनिष्ठावाद), अथवा विज्ञान को राजनीति के अधीन होना चाहिए (अपचयनवाद), अथवा उपयोगिता एकमात्र मागदशक सिद्धात है (उपयोगितावाद)।

(ख) हम यथाथ को अनेक प्रक्रियाओ से गठित एक सामा य प्रक्रिया के रूप मे देखते और समझते है। इन प्रक्रियाओ के विभि न रूप और आचरण हैं। लेकिन वे आपस मे कभी एकता और कभी सघष के जरिए अतरक्रिया की सामा य पद्धति पर चलती हैं। यह दोतरफा अतरक्रिया हरेक प्रक्रिया के परिणाम और गुण मे लगातार आशिक परिवतनो को ज म देती है और एक नाजुक मोड पर पहुचकर हर प्रक्रिया को दूसरी मे बदल देती है।[1]

(ग) यह सामा य धारणा नीचे दिए वज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

(1) क्वाटम यात्रिकी विज्ञान (सूक्ष्म जगत से सबधित विज्ञान) हमे बताता है कि (यूरेनियम 235 अथवा प्लूटोनियम-239 जैसे मध्यम भार वाले तत्वो के) रेडियोधर्मी नाभिक मे प्रोटोन और यूट्रोन के बीच एकता भग होने से परमाणु ऊर्जा निकलती है। परमाणु विखडन नामक इस प्रक्रिया को किसी परमाणु रिएक्टर अथवा परमाणु बम मे देखा जा सकता है। इसके विपरीत (एक ही परमाणु से गठित हल्के भार वाले तत्व) हाइड्रोजन के दो परमाणु जब मिलकर हीलियम (दो परमाणुओ से गठित) बनाते हैं तो उससे भारी मात्रा मे परमाणु ऊर्जा निकलती है। इस प्रक्रिया को परमाणु सयोजन कहा जाता है। हमारे सूय समेत सभी तारो मे ऊर्जा उत्पादन की यह सामा य विधि है।

(ii) भौतिक विज्ञान (बृहत् जगत से सबधित विज्ञान) हमे बताता है कि निश्चित हालात मे पानी के अणुओ के बीच करीबी एकता उसे बफ मे बदल देती जबकि उसके अणुओ को अलग करने से वह भाप मे तब्दील हो जाता है।

ठोस चीजो के मुकाबले हवा मे अणुओ के बीच की औसत दूरी करीब 10 गुना ज्यादा है। हमारी पृथ्वी खुद गसो धूल और पत्थर व लोहे के कणो का मिश्रण है जो गुरुत्वाकषण, गैस दाव और विद्युत चुम्बकीय शक्ति के जरिए आपस मे मिल गए थे।

(iii) रसायन विज्ञान हमे बताता है कि निश्चित मात्रा म दो तत्वो के मिश्रण से एक नया यौगिक बनता है (मसलन सोडियम + क्लोराइड = साधारण नमक)। किसी यौगिक को निश्चित मात्राओ वाले दो तत्वो मे विघटित किया जा सकता है (मसलन पानी = आक्सीजन का एक परमाणु + हाइड्रोजन के दो परमाणु)। गैसो के मिश्रण से हवा बनी है। हवा को गैसो म विखडित किया जा सकता है।

(iv) जीव विज्ञान हमे बताता है कि जैविक प्रक्रियाओ (यानी पौधो पशुओ और मनुष्यो) मे पाचन क्रिया और निकास क्रिया की मेटाबोलिक प्रक्रियाएँ कैसे उनम आशिक और मूलभूत परिवतन लाती हैं।

(घ) हम अपनी इस सामान्य धारणा को सोच व अमल के लिए उपयोगी एक मॉडल के रूप म ही मानते है। हम इसे सिद्धात के तौर पर पेश नही करते जो किसी चीज का आधिकारिक और प्रामाणिक विवरण देने का दावा करता है।

4 सामाजिक अध्ययन की हमारी विधि

(क) सामाजिक विज्ञानो के गहरे अध्ययन से भी पता चलता है कि मानव समाज (प्रकृति की ब्रह्माण्डव्यापी प्रक्रिया का एक भाग) एक दोतरफा अतरक्रिया के कारण वजूद रखता है। उसम गति और परिवतन भी इसी वजह से होते है। यह दोतरफा अतरक्रिया एक तो प्रकृति की सरचना (जिसमे विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं के बीच अतरक्रिया शामिल है) और मनुष्यजाति क सगठन के बीच है तथा दूसरे, मानवीय सामाजिक सगठन के भीतर उसकी विभिन्न सामाजिक इकाइयो (जिसमे व्यक्ति की सामाजिक इकाई शामिल है) के बीच है।

(ख) प्रकृति अनेक अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रक्रियाओ (मसलन हवा, पानी, भोजन, विषाणु, भूकप आदि) क जरिए मनुष्य के साथ क्रिया प्रतिक्रिया करती है। मनुष्य भी विभिन्न एकतामूलक अथवा सघषमूलक तरीको (मसलन सास लेने पीने, खाने, औद्योगिक, कृषि और खनिज उत्पादन करने आदि) के जरिए प्रकृति के साथ क्रिया प्रतिक्रिया करता है। इसी प्रकार मनुष्य या तो अपने विचारो और व्यवहार को जोडकर (कभी व्यक्तिगत और कभी सागठनिक तौर पर) अथवा अपन विचारो और व्यवहार को भिडाकर (कभी व्यक्तिगत और कभी सागठनिक तौर पर) आपस मे अतरक्रिया करत हैं।

(ग) प्रकृति मनुष्य को अपन सामाजिक श्रम विभाजन पर चलन के लिए मजबूर करती है (मसलन मनुष्य मशीन की गति क साथ अपनी गति का तालमेल बिठाकर ही उसे चला सकता है)। नतीजतन, मनुष्य निश्चित सामाजिक श्रम विभाजन क मुताबिक अपनी सामाजिक इकाइया (मसलन पहल कुल, फिर कबीला, वर्ग,

क्षेत्रीय समुदाय और अब राष्ट्र) और सामाजिक संबंध बनाता है। इसके विपरीत, प्रकृति की विभिन्न प्रक्रियाओं की संरचना और आचरण के बारे में अधिकाधिक ज्ञान हासिल करके मनुष्य प्रकृति को विकसित और नियंत्रित करता है।

(घ) मानव ज्ञान, प्राकृतिक हो या सामाजिक और सैद्धांतिक हो या व्यावहारिक, उपरोक्त दो अंतरक्रियाओं से आता है। प्राकृतिक ज्ञान के मामले में जानकारी का आधार प्राकृतिक वस्तुओं में निहित होता है जबकि उनका प्रेक्षण, व्याख्या और धारणाओं का निर्धारण मानवीय सोच द्वारा होता है। इसी प्रकार, सामाजिक ज्ञान के मामले में जानकारी का आधार जहाँ सामाजिक श्रम विभाजन (जिसमें सामाजिक संबंध और सामाजिक इकाइयां शामिल हैं) में निहित होता है, वहीं उनका प्रेक्षण, व्याख्या और धारणाओं का निर्धारण मानवीय सोच द्वारा होता है। ज्ञान की मनोगत रचना में असाधारण व्यक्ति की सामाजिक इकाई वैचारिक परिशोधन संयंत्र की भूमिका निभाती है जबकि उससे जुड़ा समूह, वर्ग, संगठन आदि वैचारिक तौर पर कच्चा माल मुहैया करता है।

(ड) अभी तक मनुष्य को मोटे तौर पर चार प्रकार के टेक्नोलाजिकल रचनातंत्रों (उनके उप रचनातंत्रों सहित) और उनसे जुड़े चार प्रकार के सामाजिक श्रम विभाजन को विकसित करने और चलाने का ही ज्ञान है। इन्हीं के आधार पर इतिहास में मोटे तौर पर चार प्रकार के समाज अथवा सामाजिक व्यवस्थाएं (अनेक उपव्यवस्थाओं सहित) रही है। ये हैं (i) भोजन संग्रहण और शिकार करने की टक्नालॉजी और उससे जुड़े सामाजिक श्रम विभाजन वाली कुल व्यवस्था जो लाखों साल चली, (ii) पशुपालन टेक्नोलॉजी और उससे जुड़े सामाजिक श्रम विभाजन वाली कबीलाई व्यवस्था जो हजारों साल चली (iii) कृषिकारी टेक्नोलाजी और उससे जुड़े सामाजिक श्रम विभाजन वाली सैन्य सह धार्मिक रजवाड़ाशाही व्यवस्था जो करीब दो हजार साल चली, तथा (iv) औद्योगिक टेक्नोलाजी और उससे जुड़े सामाजिक श्रम विभाजन वाली राष्ट्र राज्य व्यवस्था जो अभी जारी है।

(च) सामाजिक विकास के जरिए व्यवस्था में परिवर्तन एक बहुपक्षीय (यानी राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि) और बहुआयामी प्रक्रिया है। जाहिर है, कोई भी अकेली सामाजिक इकाई (चाहे पश्चिमी उदारवादी मॉडल का प्रतिभासंपन्न व्यक्ति हो या समाजवादी मॉडल का कोई सामाजिक वर्ग) समूची सामाजिक उन्नति की बहुद्देश्यीय इकाई या एकमात्र वाहक नहीं होती और न हो सकती है। कभी किसी असाधारण वैज्ञानिक ने अपने समकालीन वैज्ञानिकों के साथ तो कभी किसी असाधारण अर्थशास्त्री ने अपने समकालीन अर्थशास्त्रियों, कभी असाधारण कलाकार ने अपने समकालीन कलाकारों आदि आदि के साथ मिलकर सामाजिक विकास में प्रमुख योगदान दिया है। राज्य की सर्वशक्तिमान इकाई में कोई निश्चित राजनैतिक इकाई उसका नेतृत्व मूल भूमिका निभाते हैं और निभाते आए हैं (मसलन हमारे राजनैतिक पार्टियाँ)।

5 आधुनिकीकरण या पूँजीकरण की हमारी धारणा

(क) इतिहास मे रही चार व्यवस्थाएँ आधुनिकीकरण की एक लम्बी प्रक्रिया की प्रतीक हैं। यह एक ओर टक्नोलॉजी और उससे जुडे सामाजिक श्रम विभाजन म तथा दूसरी ओर मनुष्य के सिद्धात, व्यवहार और सगठन मे परिवतन की दोतरफा प्रक्रिया है। इस तरह, भोजन सग्रहण और शिकार करने की टेक्नोलाजी और उसके सामूहिक श्रम विभाजन के दौरान भोजन सग्रह करने वाले शिकारी के साथ उसका कुटुबीय सिद्धात और कुल व्यवस्था मौजूद थी जबकि औद्योगिक टेक्नोलाजी और उसके माल के श्रम विभाजन के दौरान औद्योगिक मनुष्य के साथ उसका धर्मनिरपेक्ष जनवादी सिद्धात और राष्ट्रीय ससदीय व्यवस्था मौजूद है। दरअसल, आधुनिकीकरण की यह प्रक्रिया (टेक्नोलाजी और मनुष्य दोनो के) पूजीकरण की प्रक्रिया है, जो मानव समाज के बनने से ही शुरू हुई (यानी उस समय जब मनुष्य ने टेक्नोलाजी की रचना की और बदले मे वह उसके श्रम विभाजन से बध गया)।

(ख) मानव समाज की प्रक्रिया के अनुरूप ही सामाजिक पूँजी की प्रक्रिया भी विभिन्न चरणो से गुजरी है। भोजन सग्रहण और शिकार करने की व्यवस्था के तहत सामाजिक पूँजी मे छडियो, पत्थरो, हड्डियो, तीर कमानो, जगली उपज, पशुओ के मास आदि की टेक्नोलॉजी के साथ साथ मनुष्य के सिद्धात और व्यवहार तथा इन चीजो को पाने व चलाने के लिए कुल का सगठन शामिल था। माल के विनिमय ने पहले चीजो की अदला बदली और बाद मे सवत्र माध्यम का रूप अख्तियार किया। यह माध्यम कभी अनाज तो कभी फर, घोघा, मछलियो आदि के विभिन्न रूपो में मौजूद रहा लगता है। पशुपालन व्यवस्था के तहत सामाजिक विनिमय और सामाजिक निवेश के लिए पशु सवत्र माध्यम का मुख्य रूप बन गए। कृषिकारी व्यवस्था के तहत भूमि और पशुओ के अलावा धातु मुद्रा भी विनिमय और सामाजिक निवेश का माध्यम बन गई जबकि औद्योगिक व्यवस्था के तहत मुद्रा ने विनिमय और निवेश दोनो क्षेत्रो मे प्रमुख स्थान हासिल कर लिया। हरेक सामाजिक व्यवस्था के तहत पूजी का नियत्रण मुख्य रूप से उसकी अगुआ सामाजिक इकाई के हाथो मे रहा है।

(ग) जाहिर है पूँजी की उपरोक्त धारणा मौजूदा दो विचारशाखाओ द्वारा प्रस्तुत पूँजी के दो आम सिद्धातो से भिन्न है। पश्चिमी उदारवादी अथशास्त्र पूजी को उत्पादन के साधनो का समग्र रूप मानता है जबकि मार्क्सवादी अथशास्त्र उसे उत्पादन सबधो अथवा मजदूरो के अतिरिक्त मूल्य अथवा सचित श्रम के रूप म देखता है। पहली किस्म मानवीय पक्ष (यानी श्रम) को गौण हैसियत देती है जबकि दूसरी टेक्नोलॉजी का।

(घ) बहरहाल, इतिहास और विज्ञान बताते हैं कि टेक्नोलाजी (प्रकृति के उस भाग की प्रतीक जिसे मनुष्य चलाता है) और मनुष्य हमेशा से अतरसबधित, अतरनिभर और अभिन्न रहे हैं। दोनो ही अपने अपने ढग से सजनशील हैं। मनुष्य का नव परिवतन उसकी मानसिक और शारीरिक ऊर्जा मे निहित है जबकि टेक्नो

लाजी की उत्पादकता विद्युतीय, रसायनिक, गतिज, तापीय, स्थितिज, विकिरित, आणविक आदि ऊर्जा के विभिन्न रूपों में पाई जाती है। दरअसल, मानवीय श्रम के मुकाबले टेक्नोलॉजी अधिक मूल्य पैदा करती है (मसलन स्वचालित मशीन जहां मनुष्य कोई शारीरिक ताकत नहीं लगाता)। इसकी वजह यह है कि एक औसत मजदूर रोजाना शारीरिक काम के दौरान 120 वाट ऊर्जा (जो हाल की वैज्ञानिक खोज के मुताबिक 2400 केलोरी के बराबर है) खर्च कर सकता है जबकि उसके मुकाबले मशीन एक दिन में दसियों हजार वाट ऊर्जा मुहैया करती और इस्तेमाल करती है। लेकिन मनुष्य यदि भौतिक उत्पादन में टेक्नोलॉजी से पीछे है तो अपने मानसिक अनोखेपन के कारण वह भौतिक और वैचारिक नव परिवर्तन में टेक्नोलाजी का अगुआ भी है। इसलिए मानव समाज में टेक्नोलाजी और मनुष्य पूंजीकरण या आधुनिकीकरण के दो मूल कारक हैं।

(6) हमारी विषयवस्तु और दृष्टिकोण के बारे में यही संक्षिप्त विवरण है।

संदर्भ

1 अधिक विवरण के लिए देखें 'इंटरनेशनलिस्ट डेमोक्रेटिक पार्टी का कार्यक्रम'

अध्याय एक

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1 भू भौतिक इकाई के रूप मे भारत

(क) भू भौतिक तौर पर भारत पृथ्वी का 41वा हिस्सा है (पृथ्वी के कुल 13 39 करोड़ वर्ग किमी क्षेत्रफल मे इसका क्षेत्रफल 33 लाख वर्ग किमी है)। आज यह दुनिया मे सबसे बडी जनसख्या वाला दूसरा देश है और इसकी आबादी (1988 में) 80 करोड है। यह उस बडे भूखड का एक भाग है जिसे हम एशिया महाद्वीप कहते है।

(ख) वैज्ञानिक प्रमाण बताते है कि करोडो साल पहले भारत उस रूप म, जैसा आज हम जानते हैं, विद्यमान नही था। अरावली पर्वत के दक्षिण मे यह क्षेत्र उस भूखड का भाग हुआ करता था जिसे भूगर्भ शास्त्रियो ने गोडवाना प्रदेश नाम दिया है। यह प्रदेश पश्चिम म मारीशियस और पूर्व मे दक्षिण पूर्वी एशियाई द्वीप समूह से जुडा हुआ था (इस द्वीप समूह को भूगर्भशास्त्री लेमूरियन महाद्वीप का नाम देते हैं जो बाद मे आज के अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी ध्रुव और दक्षिणी अमेरिका मे बट गया)। हिमालय पर्वत और समूचा उत्तरी व मध्य भारत टेथिस सागर नामक एक विशाल समुद्र के नीचे डूबा था। वक्त बीतने के साथ साथ सागर की तह मे जमा तलछट चूना पत्थर म बदल गया, जो पृथ्वी की बाहरी परत मे होती हलचल की वजह से भूक्षेत्र बनता गया। एशियाई और यूरोपी भूभागो के जुडने से हिमालय पर्वत तल से एक एक इच कर ऊपर सरकता गया। आज वह करीब 6 मील ऊचा है और अभी भी बढता जा रहा है। टेथिस सागर का पानी मौजूदा अरब सागर और बगाल की खाडी म समा गया जिससे पश्चिम मे अफ्रीका और पूर्व मे दक्षिण पूर्वी एशियाई द्वीप समूह दक्षिण भारत से अलग हो गया। यह बात 10 लाख साल से अधिक पहले की है। हिमालय से निकली नदिया अपने साथ रेत मिट्टी लाइ जिनकी तहे जमने से भारत के उत्तरी मैदान वजूद म आए। धीरे धीरे एक भू भौतिक इकाई अस्तित्व मे आई जिसे आज हम भारत कहते है। भूगर्भशास्त्रियो के मुताबिक उत्तरी भारत के बहुत बडे भाग मे करीब 8,000 12,000 ई० पू० तक भी कोई आबादी नही हुआ करती थी क्योकि दलदलो के रूप मे समुद्र के अवशेष अब भी वहाँ मौजूद थे। 5,000 7,000 ई० पू० के बीच ही यह इलाका रहने लायक बना।

2 मनुष्य की रिहायशगाह के रूप में भारत

मनुष्य की रिहायशगाह के तौर पर भारतीय उपमहाद्वीप मे एक उन्नत ... लक्षण भी मिले है। इसे सिंधु घाटी की सभ्यता कहा जाता है। यह करीब

3,000 वर्ष पहले उत्तर पश्चिम भारत म फली फूली। लगभग 1700 ई० पू० मे बाहर से आए इडो आय कबीले सिंधु घाटी क वाशिदा को शायद दक्षिण की ओर धकेलकर धीरे धीरे उत्तर पश्चिमी और पूर्वी भारत म फैल गए। इडो-आय लोगो ने अपनी वैदिक सभ्यता का विकास किया जिससे भारतीय लोगा ने ज्ञान, तृप्ति, निष्कपटता व धमनिष्ठा के सूत्र और पारिवारिक व सामाजिक आचार सहिता ग्रहण की। 500 ई० पू० से लेकर 700 ई० तक बौद्धमत और जनमत उपमहाद्वीप के बहुत बडे भाग पर छाए रहे। बौद्धमत और जैनमत न भारतीय लोगा को दया, सहनशीलता व सादगी के गुणो और शातमय ससार की प्रकृति का पाठ पढाया। 700 से 1200 ई० तक के काल म अनेक मझोल और छोट रजवाडे पैदा हुए और मिट गए। इनम ज्यादातर वैदिक धम के अनुयायी थे। 1200 से 1800 ई० तक भारत के बहुत बडे भाग पर मुख्य तौर पर अफगान, तुक और मुगल बादशाहो का कब्जा रहा। उन्हाने इस्लाम को सरकारी धम बनाए रखा। इस्लाम न भारतीय लागो को समानता, एकता और अनुशासन के गुणो से लैस किया। मध्य 18वी सदी मे अग्रेजा का बगाल पर प्रभुत्व कायम हुआ और अगले सौ साल म वे समूचे भारत को अपने नियत्रण के तहत ले आए। अग्रजी राज करीब 190 साल (1757 से 1947) तक चला। इतिहास म पहली बार एक शासक के अधीन इकट्ठा हो जाने से भारत एक ही इकाई क रूप मे विकसित हुआ और समूचे दश म राष्ट्रीय भावनाए बलवती हो उठी। अग्रेजी राज के तहत भारत का स्वतत्रता आदोलन शातिपूण और गैर शातिपूण रूपो मे विकसित होता गया। लेकिन मुख्यत साप्रदायिक मनमुटाव के कारण कोई भी तरीका अग्रेजी शासन का हटाने म नाकाम रहा। दूसरा विश्वयुद्ध खत्म होने के बाद वर्तानवी उपनिवेशवाद सैनिक और आर्थिक तौर पर कमजोर हो गया तो उसन भारत म जोर पकडती विरोधी जन भावनाओ को भाँपते हुए अगस्त 1947 मे भारत को आजादी दे दी। लेकिन ब्रिटिश सरकार, काग्रेस और मुस्लिम लीग द्वारा तैयार की गई आजादी की योजना से भारत साप्रदायिक आधार पर दो टुकडो—भारत और पाकिस्तान—मे बाट दिया गया।

3 भारत का 1947 का सांप्रदायिक बटवारा क्या अपरिहाय था ?

इस बारे मे अनेक मत हैं। लेकिन यह सवाल आज भी बहुत महत्वपूण है क्योकि इस पर विचार करने से हमे 1947 की आजादी का चरित्र और साप्रदायिक बटवारा कराने वाले राजनतिक नताओ की भूमिका का पता चलता है। और इस सवाल का जवाब पाने के लिए हमे भारत मे साप्रदायिकता की धारणा और उसके सक्षिप्त इतिहास पर नजर डालनी होगी।

4 भारत में साप्रदायिकता की धारणा और इतिहास

(क) शाब्दिक अर्थो में, साप्रदायिकता एक समुदाय यानी साझे आधार वाले

एक जनसमूह की भलाई के नजरिए की द्योतक है। और समुदाय हमेशा अपने सदस्यों की पहचान का आधार रहा है। इतिहास मे कुटुबीय, कबीलाई, क्षेत्रीय, धार्मिक आदि अनेक साप्रदायिक प्रणालिया रही हैं। आज ऐसी राष्ट्रीय प्रणाली का वचस्व है। लेकिन कई क्षेत्रो के ठोस हालात के मुताबिक वहा अभी भी धार्मिक और क्षेत्रीय प्रणालिया हावी है।

(ख) आधुनिक सदभ में साप्रदायिकता का मतलब वह विचारधारा है जो राजनैतिक व आर्थिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किसी धम को इस्तेमाल करती है।

(ग) सागठनिक तौर पर, साप्रदायिकतावादियो की कई किस्मे हैं। हर किस्म धम की अनेक प्रणालिया मे किसी एक का प्रतिनिधि होन का दावा करती है। काई भी धम हालाकि सिद्धात रूप मे घृणा का सबक नही सिखाता और मनुष्य के सवत्र भाईचारे की शिक्षा देता है, फिर भी हर साप्रदायिक किस्म अपने ही धम को सर्वोत्तम बताती है। विडबना यह है कि कई धार्मिक लोग(मसलन गाधी, आजाद, गफ्फार खान, शेख अब्दुल्ला) भी राष्ट्रवादी हुए हैं और हो सकते हैं जबकि कुछ गर-धार्मिक व्यक्ति (मसलन जिन्ना) धम को अपने राजनैतिक हित साधने के लिए इस्तेमाल करने वाले कट्टर साप्रदायिकतावादी थे और हो सकत हैं।

(घ) ऐतिहासिक तौर पर धम कोई ज्यादा पुराना नही है। बौद्धमत जैनमत, ईसाईमत, इस्लाम और सिखमत क्रमश लगभग 2500, 2000, 1400 और 500 साल पुराने हैं। धम ने शुरू से ही मानव समाज मे सकारात्मक और नकारात्मक दोनो तरह से भारी भूमिका निभाई है। इसका सकारात्मक पक्ष यह है कि पूव औद्योगिक काल मे इसने अपने अनुयायिया का बुराई का त्याग करके शिष्ट जीवन जीने का उपदश देकर सामाजिक गतिविधि को अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया। इसका नकारात्मक पक्ष यह है कि इसने हमेशा और हर कही प्राकृतिक व सामाजिक घटनाओ की भगवान के नाम पर गलत व्याख्या करके तथा श्रद्धा और पूजा के सिद्धात पकडकर मनुष्य की जिज्ञासु और खोजी प्रवत्ति को गलत दिशा दी और उसका गला घोटा है।

(ङ) सोलहवीं सदी तक धम दुनिया भर मे सामाजिक जीवन के आर्थिक, राजनतिक और सास्कृतिक सभी क्षेत्रो म हावी रहा। उसके बाद इसका प्रभाव घटता आया है। वजह यह है कि तब औद्योगिक टेक्नोलॉजी और उसके सामाजिक श्रम विभाजन न जन्म ल लिया था और वह चलाने के लिए धमनिरपेक्ष सस्कृति यानी धम का राजनीति से अलग करने की जरूरत थी। औद्योगिक प्रणाली और धम निरपेक्षता पहले यूरोप मे वजूद में आई और फिर धीरे धीरे अलग अलग पमाने तक दुनिया के दूसर क्षत्रो म फैल गई।

(च) भारत में धार्मिक असहिष्णुता और धम का जन्म स ही चोली-दामन का साथ रहा है। जुनूनी कारवाइया तो मुख्यतया सभी धार्मिक सप्रदाया के शासकों न की है। धार्मिक असहिष्णुता की शुरुआती घटनाए ब्राह्मणवाद, बौद्धमत और जनमत म हुई लगती हैं (मसलन 1193-1210 के दौरान परमार राजा सुभतावमन का

गुजरात के जैन मन्दिरो को लूटना और उन्हें अपवित्र करना), हालांकि उस काल (400 ई० पू० से 1000 ई०) के एतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते है। यहा तक अफगान-तुर्क मुगल काल के दौरान धार्मिक असहिष्णुता का ताल्लुक है, यह सही है कि उस समय के शासकों ने अपने पूर्ववर्तियो की तरह धर्म को विभिन्न तरीका से अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए इस्तेमाल किया। उनमे से एक तरीका मदिरो का लूटकर धन बटोरना भी था। लेकिन उन्होने हिंदुओ और मुसलमानो के बीच स्थायी दरार पैदा करने की कभी कोशिश नही की। इससे उनकी व्यवस्था की जड़ें खुदने का अदेशा था। दरअसल, 'मुस्लिम धर्मांधता' की ज्यादातर कहानी अतिशयोक्तिपूर्ण है। यह बात उन शासको के व्यवहार से जाहिर होती है जिन्हे कुछ इतिहासकार बेहद कट्टर साम्प्रदायिक मानते हैं। मसलन, अगर महमूद गजनवी महज बुतशिकन (मूर्तिभजक) था तो उसकी सेना की एक डिवीजन म सभी हिंदू ही क्यो थे ? लाहौर का उसका गवनर हिंदू कैसे था ? उसके दरबारियो म क्या इतन ज्यादा ब्राह्मण थे ? दरअसल वह सबस ज्यादा दौलत का पुजारी था। शाहनामा के रचयिता न लिखा है कि महमूद गजनवी को "एक ही मदिर से 230 मन सोना और 40 मटके स्वण धूलि मिली थी। तोलन पर मटको म 1320 मन साना पाया गया।" औरगजेब ने जहा कुछ मदिरो को गिरवाया, वही उसने अहमदाबाद के जगनाथ मदिर समेत सैकडा दूसरे मदिरा को अनुदान और सहायता दी। टीपू सुलतान ने 18वी सदी के आखिरी चतुर्थांश मे शृंगरी मठ को बचाने के लिए अपनी फौज भेजी। हिंदू पेशवा रघुनाथ राव पटवधन इस हिंदू तीथ को लूटना चाहता था। टीपू का वजीरेआजम (पुरनया), वजीरे खजाना (कृष्ण राव) और वजीरे दाखिला (शामा आयगर) हिंदू थे। 712 ई० म सिंध पर हमले के दौरान जब कुछ मदिर क्षतिग्रस्त हो गए तो खलीफा न कासिम को नुकसान का हरजाना देने का हुकुम दिया। बडे पैमाने पर मुसलमान बनाए जाने की घटनाए दरअसल ऐसे क्षेत्रो (मसलन कश्मीर, केरल, पूर्वी बगाल, पश्चिमी पजाब आदि) मे हुई जहा कभी दिल्ली दरबार का ज्यादा सिक्का नही चला। जाहिर है कि ये धर्म परिवतन सरकारी दबाव के बिना हुए। मुसलमान सूफियो के प्रचार का इसमे ज्यादा योगदान रहा। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र आदि मे हिंदू हमेशा बहुसख्यक रहे। हिंदू और मुसलमानो के बीच वैवाहिक सम्बन्ध भी आम थे। 18वी सदी के शुरू मे मुगल राज के खिलाफ लडते सिख किसानो के साथ साथ हजारो मुसलमान किसानो ने भी अपने प्राण न्योछावर किए। उस समय हिंदू राजा तो औरगजेब के पक्ष मे लडे। हिंदू मुसलमान और मराठा किसानो ने मुगल राज के खिलाफ मिलकर गुरिल्ला लडाई लडी। राणा प्रताप की सेना म अनेक मुसलमान थे, जिनमे उनके तोपखाने का सिपहसालार भी शामिल था (तोपखाना उस समय सेना का बेहद महत्वपूण अग था)। विजयनगर के हिंदू राजा की सेना मे करीब 80,000 मुसलमान थे। इन दोनो तथ्यो से उस समय के सामाजिक सबधो और परपराओ का पता चलता है।

5 भारत मे आधुनिक साप्रदायिकता

ब्रिटिश राज के दारान आकर ही धम को सगठित तरीके से राजनैतिक हितो मे बरता जाने लगा। 1857 से पहले तक ब्रिटिश राज ने अपने साम्राज्य को बढाने और मजबूत करन की खातिर हिंदू मुसलमान राजाओ के अतरविरोध को ही इस्तेमाल किया था। लेकिन 1857 मे भारत के स्वतन्त्रता युद्ध के बाद उसन फूट डालो और राज करो की नीति हिंदुओ और मुसलमानो के बीच ही नही बल्कि सवण हिंदुओ और हरिजनो व आदिवासियो के अलावा 'द्रविड दक्षिण और 'आय' उत्तर को लडाने के लिए भी इस्तेमाल करना शुरू कर दी। इस नीति के तहत पहले सना मे, फिर अभिजात्य वग मे और बाद म लोगो म साप्रदायिक भावना पैदा करने के लिए सुनियोजित पग उठाए गए। भारतीय राजनीति को साप्रदायिक बनाने मे ब्रिटिश राज को हिंदू पुनरुत्थानवाद और मुस्लिम कट्टरपथ की मदद मिली।

6 हिंदू पुनरुत्थानवाद और काग्रेस

(क) हिंदू पुनरुत्थानवाद का शुरुआती इजहार राजा राममोहन राय, दयानद सरस्वती बकिमचद्र चटर्जी, विवेकानद, तिलक, अरबिदो, मदनमोहन मालवीय, सावरकर सरीखे अनेक आधुनिक सुधारक नेताओ की धारणाओ मे हुआ। राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज स्थापित किया जो यूरोपी ज्ञान के सिद्धातो और उपनिषदो के दार्शनिक विचारो का सयोजन था। दयानन्द सरस्वती ने आय समाज की नीव रखी जिसन सवत्र वैदिक आर्य सर्वोच्चता को स्वीकार किया। बकिमचद्र चटर्जी ने हिंदू पौराणिकी का प्रचार किया। विवेकानद ने सवत्र पौराणिक हिंदू सर्वोच्चता का उपदेश दिया। तिलक तो शिवाजी की विरासत को फिर से जिलाना चाहते थे। वे गणपति उत्सव भी मनाया करते। अरविदो ने काली को युगचेतना बताने के साथ साथ सनातन धम को भारत की आत्मा बताया। मदनमोहन मालवीय सनातन हिंदूमत के समथक थे। सावरकर हिंदू आदर्शों की सर्वोच्चता के प्रचारक रहे। सक्षेप मे, इन सभी सुधारको का मत था कि प्राचीन (अथवा वैदिक) भारत ही दुनिया की सारी सभ्यता का स्रोत और देवी नतिकता का ध्वजवाहक रहा है। उनका दावा था कि भारतीय एतिहासिक प्रक्रिया अलौकिक किस्म की रही जो ऋषियो द्वारा रचे गए दशन पर आधारित थी और उसका अतरराष्ट्रीय ऐतिहासिक प्रक्रिया से कोई लेना देना नहीं था। उन्होने यह मिथ्या धारणा भी पदा की कि वैदिक भारत सर्वोत्तम था। उनमे कइयो का तो यहाँ तक तक था कि प्राचीन भारत की उज्ज्वल छवि दुष्ट मुसलमान शासको ने खराब की जिन्होंने भारत के समृद्ध धम' का नाश करके उसकी खुशहाल जिंदगी को नष्ट कर डाला।

(ख) सन् 1920 के लगभग काग्रेस का नेतत्व गाधी के हाथ मे आ जाने के बाद भी इस स्थिति म कोई बदलाव नही आया। उन्होने भी प्राय हिंदू धम पुस्तको [illegible] कथाओ स मुहावरे, लाक्षणिक अथ और उदाहरण इस्तेमाल किए।

ए रामराज्य एक आदर्श राज्य था। उन्होंने लगातार उसे भारत की नई
क व्यवस्था का लक्ष्य करार दिया। गीता न उन्हें मनुष्य के कम का एक
उनके हि तिक आधार मुहैया किया। उनका राष्ट्रीय गीत वंदे मातरम' बंकिमचंद्र
सामाजि एक उपन्यास से लिया गया था। उस उपन्यास म एक हिंदू मठ के सदस्य
आदश रम' को मुसलमान हमलावरो के खिलाफ युद्धनाद के तौर पर इस्तेमाल करते
चटर्जी पूजा और वण व्यवस्था के बारे मे उन्होंने 'यग इंडिया' मे लिखा 'इसम
'वंदे मात म मे) गो पूजा मेरी राय मे मानवतावाद के क्रमिक विकास के प्रति एक
हैं। गो योगदान है। अतत वर्णाश्रम धम की खोज सत्य की अथक खोज का ही
(हिंदू ध परिणाम है।"[1] इन धारणाओ (यानी रामराज्य, गीता, वंदे मातरम, गो
अभूतपूर्व र्णाश्रम धम) पर जोर देने का मतलब राजनीति म धम को घुसेडना है।
शानदार (ग) जाहिर है, सुधारवादी नेताओ द्वारा भारत के वैदिक युग के स्तुतिगान
पूजा, वर्णो द्वारा हिंदू अलकारो के इस्तेमाल से लोगो मे साम्प्रदायिक चेतना मजबूत
से एक तरफ हिंदू समुदाय प्राचीन सभ्यता का पुनर्जीवित करने की ओर
और गांधी ा और दूसरी तरफ मुसलमान समुदाय मे भी मुस्लिम पुनरुत्थान के विचार
हुई। इस गए। इससे मुस्लिम लीग गाधी को हिंदुओ के नेता और काग्रेस को हिंदुआ
प्रेरित हु के तौर पर प्रस्तुत करने मे कामयाब हुई।
पैदा हो (घ) गाधी और दूसरे सुधारवादी नेताओ के इस हाव भाव से जहाँ उनकी
के सगठ ान प्रकट होती थी, वही उनके बेउसूले समझौते और दभी व्यवहार ने
कट्टरपंथियो को पनपने मे मदद दी। बेउसूले समझौते न मुसलमानो की
हिंदू पह ाव की भावना को मजबूत किया जबकि दभी व्यवहार ने मुसलमानो को
मुस्लिम लीग की तरफ धकेल दिया। इस सदी के पहले अर्द्धांश म हुई अनेक घटनाएँ
अलग प की पुष्टि करती है। 19वीं सदी के अत मे जब ब्रिटिश सरकार ने मुसल-
मुस्लिम ो अलग नुमायदगी देने का विचार रखा तो किसी भी पुनरुत्थानवादी नेता
इस तथ्य स ने इसका कारगर विरोध नही किया। उन्होंने 1909 के मॉर्ले मिंटो
मानो क ो चुपचाप कबूल कर लिया जिनके तहत अलग मतदाताओ और साम्प्रदायिक
या काग्रे त्व की व्यवस्था वजूद मे आई। 1916 म मुस्लिम लीग के साथ लखनऊ
सुधारो र दस्तखत करके काग्रेस न मुसलमानो की अलग पहचान कबूल कर ली
प्रतिनिधि लम लीग को भारत के मुसलमान समुदाय का प्रवक्ता मान लिया। इससे
संधि प लोग मुसलमान और हिंदुओ के दो मुख्य साम्प्रदायिक गुटो मे बट गए।
और मु साल मे मुस्लिम लीग से वह योजना मनवाने की अनेक कोशिशें की गई
भारतीय युक्त मतदाता प्रणाली के तहत मुसलमानो की सीटें आरक्षित करने की बात
अगले 2 मुस्लिम लीग के अडियल रुख, काग्रेस के अधमने रवय (यह पार्टी मुस्लिम
जिसम र ाथ एकता फार्मूले के बारे म हिंदू महासभा से मजूरी लिया करती थी, जैसे
थी। पर राजेंद्र प्रसाद और जिन्ना के बीच हुए समझौते के वक्त) तथा ब्रिटिश राज
लीग के त्मक भूमिका के कारण ये सभी कोशिशें नाकाम हो गई। इस सबध मे
1935
की विध

एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि गांधी जहां 1935 मे ब्रिटिश सरकार द्वारा साम्प्रदायिक पंच निर्णय के तहत अनुसूचित जातियों व जनजातियों को अलग मतदान अधिकार दिए जाने के विरोध में मरणव्रत पर बैठ गए, वहीं मुस्लिम समुदाय को ऐसा अधिकार मिलने पर उन्होंने कुछ नहीं किया। शायद वे मुस्लिम समुदाय को अलग राष्ट्रीयता मानते थे।

(ङ) 1937 में ऐसा माकूल मौका आया भी। प्रांतीय विधानसभा चुनावों में कांग्रेस की शानदार जीत और मुस्लिम लीग के कमजोर प्रदर्शन के बाद लीग ने उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के साथ मिली-जुली सरकार बनाने का प्रस्ताव रखा। नेहरू ने यह कहकर इस पेशकश को ठुकरा दिया कि भारत में दो ही पार्टियां हैं—एक कांग्रेस और दूसरी ब्रिटिश—तथा कांग्रेस के सिवा कोई भी भारतीय लोगों की नुमायंदगी नहीं करता। यह बेहद नासमझी भरा बयान था जिससे न सिर्फ मुस्लिम लीग के साथ बल्कि विभिन्न क्षेत्रीय मुस्लिम गुटों के साथ भी संयुक्त मोर्चा बनाने का विकल्प खत्म हो गया। इससे एक तो बंगाल की कृषक प्रजा पार्टी के नेता फजल उल हक मुस्लिम लीग के साथ हाथ मिलाने पर मजबूर हुए। दूसरे, पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी के सिकंदर हयात खां को जिन्ना के साथ एक संधि पर दस्तखत करके मुस्लिम लीग से समझौता करना पड़ा। तीसरे, उत्तर प्रदेश मे मुसलमानों के एक अहम नेता खलीकुज्जमां सख्त नाराज हो गए और बाद में पाकिस्तान के भारी समर्थक बन गए।

(च) अनेक महत्वपूर्ण कांग्रेसी नेताओं इतिहासकारों और लेखकों का मत है कि मिली जुली सरकारें बनाने मे कांग्रेस की हिचकिचाहट देखते हुए मुसलमान उससे अलग हटकर देश विभाजन की मांग का समर्थन करने लगे। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी और दीवान चमनलाल[2] सरीखे जाने माने कांग्रेसी नेता लिखते हैं कि 1937 में जिन्ना संयुक्त मतदाता प्रणाली कबूल करने को तैयार थे। प्रसिद्ध इतिहासकार आर०सी० मजूमदार[3] ने लिखा है कि कांग्रेस के सर्वसत्तावाद ने भावी राजनीति मे बेहद विनाशकारी परिणामों को जन्म दिया। जाने माने लेखक माइकल ब्रेखर[4] कहते हैं कि (चुनावी) जीत के नशे में चूर कांग्रेस ने बाकी सभी राजनैतिक पार्टियों के प्रति अभिमानी रवैया अख्तियार करके एक भारी गलती की जिसकी आने वाले वर्षों में उसे भारी कीमत चुकानी पड़ी। एक मशहूर पत्रकार फ्रैंक मोरेस[5] ने टिप्पणी की है कि चुनावों के बाद अगर कांग्रेस ने लीग के साथ उचित व्यवहार किया होता तो पाकिस्तान कभी वजूद मे न आता। एक जाने माने लेखक के० के० अजीज[6] ने लिखा है कि कांग्रेस ने 1937 मे मुसलमानों को सत्ता मे हिस्सा देने से इनकार करके पाकिस्तान को अवश्यंभावी बना दिया। मौलाना आजाद का भी मानना था कि अगर कांग्रेस ने 1937 में लीग के प्रस्ताव पर उचित प्रतिक्रिया दिखाई होती तो प्रांत मे मुस्लिम लीग छिन्न भिन्न हो जाती और पाकिस्तान की मांग न उठती।[7]

(छ) जहां कांग्रेस ने 1937 में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि स्वरूप को मानने

से इनकार कर दिया था, वही 1944 मे गाधी ने राजगोपालाचार्य फार्मूले के आधार पर जिन्ना से समझौता वार्ता शुरू की। इस फार्मूले म मुसलमानो की बहुसख्या वाले इलाको मे उनका आत्मनिर्णय का अधिकार स्वीकार किया गया था। यह कारवाई पाकिस्तान की माग के विरुद्ध गाधी द्वारा पहले दिए गए अनेक बयानो के विपरीत थी और 1944 के स्टेफोड क्रिप्स सुझावो के विरुद्ध काग्रेस द्वारा अपनाए गए रुख के भी उलट थी। क्रिप्स मिशन ने उन प्रातो और राज्यो को आत्मनिर्णय का अधिकार देने का सुझाव दिया था जो सघ मे शामिल नही होना चाहते थे। पर काग्रेस ने इन सुझावो को रद्द कर दिया था। इससे पाकिस्तान के विचार को और मजबूती मिली। मौलाना आजाद[8] ने राजगोपालाचार्य फार्मूले पर असफल वार्ताओ के दौरान गाधी द्वारा बबई मे रोजाना जिन्ना के घर जाने और उन्हे कायदे-आज़म के नाम से पुकारने की कडी आलोचना की थी। मौलाना के मुताबिक इससे लीग का अडियलपन ही बढा।

(ज) भारत विभाजन को टालने का आखिरी मौका भी जुलाई 1946 मे हाथ से निकल गया। काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो ने मई 1946 की ब्रिटिश कैबिनेट मिशन योजना मान ली थी (इसमे कुछ शर्तों के तहत सयुक्त भारत बने रहने का प्रावधान था)। पर उसी साल जुलाई मे नेहरू ने अपनी पार्टी से सलाह किए बिना अखबारो को एक बयान जारी कर दिया कि काग्रेस समझौता के बधन से मुक्त होकर सविधान सभा मे जाएगी और हालात के मुताबिक काम करने को स्वतन्त्र होगी। इस बयान का मतलब वस्तुत कैबिनेट मिशन योजना को ठुकराना था। इसके तत्काल बाद मुस्लिम लीग ने इस योजना पर हुए समझौते से हाथ खीच लिया। मौलाना आजाद[9] ने लिखा है कि जवाहरलाल का बयान गलत था क्योकि काग्रेस इस योजना को पहले ही मान चुकी थी।

(झ) ज्यादा तफ्सील मे न जाते हुए यहाँ इतना ही कहना काफी है कि हिंदू पुनरुत्थानवाद ने समझौतापरस्त और दभी तरीके अपनाकर भारत विभाजन म बडी भूमिका निभाई। जब एक समुदाय के मूल्यो को दूसरो से श्रेष्ठ बताया जाए और अल्पसख्यक अपनी पहचान को खतरा महसूस करें तो अलगाववाद को बल मिलेगा ही।

7 मुस्लिम कट्टरवाद और मुस्लिम लीग

मुस्लिम कट्टरवाद के दो स्वरूप हुए। एक तो शाह वलीउल्लाह का सब इस्लामपथ था जिसके तहत ऐसे परपरावादी कट्टरपथी आते थे जो ब्रिटिश राज द्वारा मुसलमान शासको स राजनैतिक सत्ता हथियाए जाने की वजह से उससे खफा थे। दूसरा सैयद अहमद खाँ का मुस्लिम अलगाववाद था जिसके अनुयायी हिंदुओ द्वारा ब्रिटिश प्रशासन म निचले स्तर की नौकरियो पर एकाधिकार जमाने की वजह से उनसे ईर्ष्या करते थे। पहला रुझान 19वी सदी के शुरू म पैदा हुआ। उसे मानने वालो ने इस पूरी सदी के दौरान, खासकर उत्तर पश्चिम मे सशस्त्र सघर्ष छेडे रखा

लेकिन जन समर्थन न मिल पाने से यह नाकाम हो गया। दूसरे रुझान ने 19वी सदी के अतिम चतुर्थांश मे जन्म लिया। उसने ब्रिटिश राज के साथ समझौता करने और कांग्रेस (1885 मे स्थापित) को सहयोग न देने की लाइन अख्तियार की। यही रुझान धीरे धीरे विकसित होकर 1906 मे मुस्लिम लीग मे बदल गया। वजूद म आने के बाद लीग ने मुसलमानो के लिए अलग मतदाता प्रणाली अपनाने की माग की। मॉर्ले मिंटो सुधारो (1909) म अलग मतदाता प्रणाली के सुझाव स जहाँ उसे सरकारी प्रोत्साहन मिला वही काग्रेस द्वारा अलग मतदाता प्रणाली की अभिपुष्टि किए जाने (1916 मे काग्रेस लीग की लखनऊ सधि) स उसे नैतिक और तार्किक आधार भी मिल गया। पाकिस्तान के लक्ष्य की ओर इसका अगला सफर जिन्ना की अगुआई मे तय हुआ। जिन्ना को एक तरफ ब्रिटिश सरकार का पूरा सरक्षण मिला और दूसरी तरफ अलग वतन के पक्ष मे मुसलमानो को लाकर उन्होन बडी चतुराई से काग्रेस को मात भी दे दी। नतीजा यह हुआ कि 1947 मे भारत का दुर्भाग्य पूण बटवारा हो गया।

8 विभाजन के विकल्प

ऊपर दिए तथ्यो के मद्देनजर कुछ सवाल उठने स्वाभाविक ही हैं।

(क) (1) भारत विभाजन के लिए दोषी कौन? कुछ हलको (नेहरू-समर्थक काग्रेसियो कम्युनिस्टो मार्क्सवादी कम्युनिस्टो आदि) के अनुसार मुख्य कसूरवार ब्रिटिश उपनिवेशवाद है जिसने मुस्लिम लीग को दासी की तरह इस्तेमाल किया। कुछ दूसरो (पटल समथक काग्रेसियो भाजपाइयो और दूसर कट्टर हिंदू समथक तत्वो) का मानना है कि इसकी मुख्य जिम्मेदारी मुस्लिम अलगाववाद पर है जिसे ब्रिटिश उपनिवेशवादियो का समथन हासिल था। मौलाना आजाद[10] ने लिखा है याद रखें भारत मे लाड माउटबेटन के विचार को सवप्रथम मानन वाले व्यक्ति सरदार पटेल थे उन्ह यकीन था कि वे मुस्लिम लीग के साथ काम नही कर सकते। उन्होने सरआम कहा था कि वे लीग को भारत का एक हिस्सा दने को तयार हैं बशर्ते वे उससे छुटकारा पा सकें। पटल के इस कथन पर कि हम पसन्द करें या न करें, भारत मे दो राष्ट्र है—मुझे ताज्जुब हुआ और दुख भी। उन्ह अब यकीन हो गया था कि मुसलमान और हिंदू एक राष्ट्र मे नही रह सकते। मौलाना के अनुसार नेहरू तो एक समय विभाजन के सख्त खिलाफ थे पर बाद मे वे सरदार पटेल का साथ देने लगे। इसका एक कारण उन पर लाड माउटबेटन और उनकी पत्नी का प्रभाव होना था। मौलाना को उस समय और गहरा आघात लगा जब उन्होने गाधी को पटेल के दबाव म आते देखा। मौलाना के मुताबिक विभाजन के पक्ष मे जोर लगाने के बावजूद पटेल को भरोसा था कि नया पाकिस्तानी राज्य ज्यादा देर नही टिक पाएगा। उन्होने सोचा कि पाकिस्तान की माग मान लेन से मुस्लिम लीग को कडवा सबक मिल जाएगा। पाकिस्तान तो थोडे ही अरसे म ढह जाएगा और भारत से अलग होने वाले प्रातो को

भारी मुसीबतो और मुश्किलो का सामना करना पड़ेगा। एलन कैंपबेल-जॉनसन[11] ने लिखा है पूरी समस्या के प्रति वे (पटेल) स्पष्ट और दृढनिश्चयी मत रखते थे कि भारत को मुस्लिम लीग से छुटकारा पा लेना चाहिए। जाने माने अमेरिकी पत्रकार लूई फिशर[12] ने लिखा है कि नेहरू ने पटेल की इस दलील के आगे घुटने टेक दिए कि एकीकरण चार, पाच या दस साल मे हो ही जाएगा।

(ii) हमारी राय में, ब्रिटेन और मुस्लिम लीग इसके लिए अपनी अपनी तरह से जिम्मेदार जरूर हैं पर मुख्य दोषी काग्रेस ही है। वजह यह कि उसके पुनरुत्थानवादी राष्ट्रवाद ने मुसलमानो को विमुख कर दिया, अलग मतदाता प्रणाली की माग से उसके बेअसूले समझौते और मुस्लिम लीग के प्रति उसके दब्बू व्यवहार से लीग को मुसलमानो मे अपना असर बढाने मे अप्रत्यक्ष मदद मिली, तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के प्रति अपने घुटनाटेक रवैए से वह ब्रिटिश प्रशासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को विफल बनाने मे अक्षम हो गई। राष्ट्रीय पहचान बनाने का काम तभी सिरे चढ सकता है जब सबधित पार्टी दृढता से साप्रदायिकता की सभी किस्मो के खिलाफ लडे और धर्मनिरपेक्षता (धर्म को राजनीति से अलग रखने की नीति) का झडा बुलद रखे। अगर वह पुनरुत्थानवादी नीति पर चले तो विभिन्न प्रकार के कट्टरवाद के बीच होड चल पडती है जिससे समूची राज्य व्यवस्था साप्रदायिक रग म रग जाती है। यही 1947 से पहले के भारत मे हुआ और 1947 के बाद भी होता आया है। यही वजह है कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद और मुस्लिम अलगाववाद की रवानगी के 40 साल बाद भी साप्रदायिकता आज भारतीय राज्य व्यवस्था की सबसे बडी समस्या बनी चली आ रही है तथा 1947 के बाद के साप्रदायिक दगो ने 1947 से पहले का रिकार्ड भी तोड दिया है। अगर काग्रेस का राष्ट्रवाद सचमुच धर्मनिरपेक्ष है तो 40 साल तक इसके अमल मे रहने के बाद भी क्यों सिख अलगाववाद ने भारत म जन्म लिया है हालाकि सिख और हिंदू समुदाय सदियो से चोली-दामन की तरह साथ रहते आए हैं? अगर काग्रेस का राष्ट्रवाद पुनरुत्थानवादी नही तो धर्मनिरपेक्ष भारत मे जातिवाद ने क्यो पहले से भी ज्यादा तेजी से देहातो को अपनी गिरफ्त मे ले लिया है तथा अनुसूचित जातियाँ व जनजातिया क्यो अधिकाधिक विमुख होकर जातिवादी हिंदुओ से नाता तोडकर बौद्धमत अख्तियार कर रही है और काग्रेस पार्टी को छोडकर अपने राजनैतिक सगठन (जैसे बहुजन समाज पार्टी) बना रही हैं? अगर काग्रेस की धर्मनिरपेक्षता मे हिंदुवाद का पुट नही है तो इसके 40 वर्षीय शासन मे हिंदू कट्टरवाद की नई नई किस्मे (शिवसेना विश्व हिंदू परिषद, हिंदू सुरक्षा समिति, बजरग दल, हिंदू जागरण समिति, राम जन्मभूमि मुक्ति यज्ञ समिति आदि) क्यो पैदा हुई है? अगर काग्रेस की धर्मनिरपेक्षता सचमुच राष्ट्रवादी है तो 40 साल के औद्योगीकरण के बावजूद वह जोर क्यो नही पकड पाई तथा नई नई साप्रदायिक, जातिवादी, क्षेत्रीय और सकीर्णतावादी ताकतें क्यो उस पर आघात करती आ रही हैं। फिर, अगर भारतीय राज्य की धर्मनिरपेक्षता

धर्मों के प्रति समान आदर के असूल (सव धर्म सममाव) पर आधारित है तो भारतीय संविधान (यानी भारतीय राज्य का मूल सिद्धांत) बहुसंख्यक समुदाय की आचार संहिता को संरक्षण क्यों देता है ? मसलन—*संस्कृत भाषा (जो भारत में किसी भी जन समूह की बोली न होकर महज कुछ शैक्षणिक संस्थाओं तक ही सीमित है लेकिन हिंदू परंपरा में जिसे देवी भाषा माना जाता है) को राष्ट्रीय भाषा के बतौर संवैधानिक दर्जा देना।[13] **संविधान में इंडिया का नाम भारत दर्ज करना (यह शब्द भारत माता अथवा महाभारत की हिंदू धारणा से पैदा हुआ है)। *** राष्ट्रीय प्रतीक के नीचे सत्यमेव जयते (हिंदू उपनिषद 'मुंडक' से ली गई एक सूक्ति) लिखना अनिवार्य बनाकर उसे संवैधानिक हैसियत देना ।**** हिंदी को भारत की एकमात्र सरकारी भाषा के तौर पर संवैधानिक दर्जा देना—हालांकि यह भाषा हिंदू संस्कृति से जुड़ी हुई है और हिंदू पौराणिकी के मुताबिक इसकी लिपि देवों की लिपि है पर इसे बोलने वाले महज 33 फीसदी लोग हैं।***** वंदे मातरम् (हिंदू रस के एक गीत) को राष्ट्रीय गीत के तौर पर संवैधानिक दर्जा देना। ****** मोर (जो कि हिंदू परंपरा के मुताबिक पवित्र पक्षी है) को राष्ट्रीय पक्षी के तौर पर संवैधानिक दर्जा देना।******* संविधान में सिख धर्म बौद्धमत और जैनमत को हिंदूमत की शाखाएं बताना (अनुच्छेद 25 2वी)। ******** राज्य नीति के निदेशक सिद्धांतों में गौवध पर पाबंदी को शामिल करके उसे संवैधानिक दर्जा देना (अनुच्छेद 48)। अगर भारतीय राज्य की धर्मनिरपेक्षता बहुसंख्यक समुदाय के कट्टरवाद की तरफदारी नहीं करती तो क्या वजह है कि राज्य और सरकार का हर अहम काम पूजा और आरती से शुरू होता है और लगभग हर हिंदू मंदिर और तीर्थस्थल को एक या दूसरे रूप में केंद्रीय राज्य या स्थानीय सरकार से आर्थिक मदद और सांस्कृतिक रियायतें मिलती हैं क्या वजह है कि सभी सरकारी बयान और इतिहास ग्रंथ आर्यों के वैदिक काल को भारतीय इतिहास का सुनहरा युग बताते हैं और इस तरह बाकी एतिहासिक कालों (यानी वैदिक युग से पहले और बाद के कालों) को गौण महत्व देते हैं।

(iii) दरअसल भारत और पाकिस्तान की राज्य संस्कृतियां धर्म पर आधारित हैं—पाकिस्तान में इस्लामी और भारत में बहुधार्मिक धर्मनिरपेक्षता के लबादे में हिंदू पुनरुत्थानवादी। यही वजह है कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही एकतामूलक राष्ट्र बनाने में नाकाम रहे हैं। पाकिस्तान तो दो टुकड़ों में बंट ही गया है। बांग्लादेश एक नया राष्ट्र राज्य बन गया है। बाकी बचे पाकिस्तान में पंजाबी सिंधी, बलूच और पठानों की चार राष्ट्रीयताओं के बीच जबरदस्त रस्साकशी चल रही है। पाकिस्तानी राष्ट्रवाद का तो पूरी तरह दिवाला निकल गया है पर भारतीय राष्ट्रवाद में कुछ दरारें ही दिखती हैं। बढ़ते सांप्रदायिक और जातिवादी तनावों के अलावा ये दरारें पंजाब, कश्मीर असम मणिपुर नगालैंड तमिलनाडु झारखंड, विदर्भ, उत्तराखंड और कोल्हनिस्तान (बिहार) में झलकती हैं। पाकिस्तान का राष्ट्रवाद जहां पूरी तरह नाकाम रहा वहीं भारतीय राष्ट्रवाद को थोड़ी नाकामी मिली है। निष्कर्ष साफ है।

किसी भी राष्ट्र का निर्माण धार्मिक आधार पर नहीं किया जा सकता। यह बात मध्य-पूर्व के अनुभव से जाहिर होती है। भारत के मामले में एक ही बात उसके पक्ष में है और यह उसकी बहुदलीय संसदीय प्रणाली है जो तनावों को बर्दाश्त कर पाती है। इस पर हम उपयुक्त जगह पर विचार करेंगे।

(ग) (i) क्या विभाजन अनिवार्य था? दीर्घकालिक अथवा अल्पकालिक किसी भी कोण से देखें, यह जरूरी नहीं था।

(ii) दीर्घकालिक नजरिए से देखें तो अगर गांधी ने हिंदू अलंकारों का प्रयोग न किया होता और कांग्रेस ने एक तरफ मुसलमानों के लिए अलग मतदाता प्रणाली के सवाल पर ढुलमुल समझौते की नीति पर और दूसरी तरफ मुस्लिम लीग के प्रति धौंसबाजी की नीति पर अमल न किया होता तो लीग मुसलमानों में बेहद लोकप्रिय न हो पाती। ऐतिहासिक तथ्य इसकी गवाही देते हैं। सिंध, बलूचिस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत जैसे इलाकों में जहां मुसलमान भारी संख्या में थे, आम पिछड़ापन होने के बावजूद ज्यादा लोग पाकिस्तान की मांग के समर्थन में नहीं थे। यहां तक कि इनमें से कुछ इलाकों (मसलन सीमा प्रांत) में तो लोकप्रिय मुसलमान नेताओं ने 1947 तक भी पाकिस्तान बनाने के विचार का समर्थन नहीं किया। उन इलाकों में जहां मुसलमानों की थोड़ी बहुसंख्या थी (जैसे बंगाल और पंजाब), वहां भी लोकप्रिय नेतृत्व उन क्षेत्रीय पार्टियों के हाथ में था जो जिन्ना के पाकिस्तान बनाने के विचार से सहमत नहीं थीं (बंगाल में फजल उल हक की अगुआई में कृषक प्रजा पार्टी थी तो पंजाब में पहले सिकंदर हयात खां और फिर उनकी मौत के बाद खिज्र हयात खां की अगुआई में यूनियनिस्ट पार्टी के अलावा खाकसार और अहरार पार्टियां)। मुस्लिम लीग के विभाजन सिद्धांत को सिर्फ उत्तर प्रदेश और बिहार में समर्थन हासिल था जहां मुसलमान बहुत ही कम संख्या में थे। 1947 के आसपास आकर ही कृषक प्रजा पार्टी और यूनियनिस्ट पार्टी मुस्लिम लीग में शामिल हुईं। अगर कांग्रेस ने कुछ अक्लमंदी से काम लिया होता (भले ही रुख उसका पुनरुत्थानवादी रहता) तो वह क्षेत्रीय मुसलमान ताकतों को मुस्लिम अलगाववाद के खिलाफ एकजुट कर सकती थी, जैसे कि उसने कश्मीर में शेख अब्दुल्ला का समर्थन करके किया। इसके अलावा, कांग्रेस ने '20 और '30 के दशक के दौरान (मसलन 1921 22, 1935, 1937 आदि में) उन मौकों का सही इस्तेमाल नहीं किया जब मुस्लिम लीग समझौते के मूड में थी और कांग्रेस के साथ उसके दोस्ताना संबंध थे। यहां तक 1947 से पहले की दूसरी राजनैतिक ताकतों का संबंध है, कम्युनिस्ट पार्टी ने पाकिस्तान के नारे को आत्मनिर्णय के राष्ट्रीय अधिकार के समकक्ष रखकर गलती की। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और हिंदू महासभा ने हिंदू कट्टरवाद पर जोर देकर माहौल को अधिक सांप्रदायिक रंगत दी और परोक्ष रूप से मुस्लिम अलगाववाद को मजबूत बनाया। कांग्रेस के अवसरवादी रुख का बिना शर्त समर्थन करके अकाली दल ने भी भूल की।

(iii) अल्पकालिक नजरिए से देखें तो 1947 में जब विभाजन की मांग मुसलमानों में लोकप्रिय हो गई तो उसके तीन विकल्प थे। ये थे *ब्रिटिश कैबिनेट मिशन योजना जिसे दोनों पक्षों ने मंजूर कर लिया था, **दोनों देशों का एक महासंघ जिसमें उनकी संयुक्त रक्षा व्यवस्था रहती, और*** सभी समझौते रद्द करके संयुक्त आजाद भारत की एक ही मांग उठाई जाती जिसकी भले ही कितनी ही कीमत चुकानी पड़ती, चाहे ब्रिटिश हुकूमत कुछ और वक्त के लिए जारी रहती या देश के कुछ भागों में गड़बड़ी के हालात रहते। पहला विकल्प मुख्यतया 14 जुलाई 1946 को नेहरू के बयान से धराशायी हो गया। तीसरा विकल्प का गांधी ने भी सुझाव दिया था पर नेहरू और पटेल ने उसे रद्द कर दिया था। हाल ही में हुए रहस्योदघाटनों के अनुसार वे सत्ता पाने के लिए बेताब थे और मूल बातों पर आपसी मतभेदों के बावजूद 1946 में भारत का साम्प्रदायिक बंटवारा मानने के लिए एक हो गए थे। इसे ही वे भारत की राष्ट्रीय समस्या का असली समाधान मानने लग गए थे। विभाजन के बाद की घटनाओं से अब लगता है कि तीनों में से कोई भी विकल्प कामयाब हो सकता था। अब उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार जिन्ना को भी अपने अंतिम दिनों (1948) में विभाजन का अफसोस हुआ था और उन्होंने यह कहा बताते हैं "पाकिस्तान बनाकर मैंने सबसे बड़ी भूल की है। मैं दिल्ली जाकर नेहरू से कहना चाहूंगा कि बीते वक्त की मूर्खताओं को भूल जाएं और दोबारा दोस्त बन जाएं।'[14] माइकल एडवर्डस ने लिखा है, 'जिन्ना सचमुच पाकिस्तान चाहते थे, यह बात संदिग्ध है। उनके सारे काम नकारात्मक थे जिनका मकसद कांग्रेस के नेतृत्व में अविभाजित भारत को उभरने से रोकना था। पाकिस्तान बनने के कुछ ही समय बाद मुस्लिम लीग में बिखराव से लगता है कि अगर कांग्रेस ने भारत को एकीकृत रखने के लिए कोई संवैधानिक स्वरूप मान लिया होता तो लीग के भीतर ही ताकतों का नया जोड़ तोड़ हो जाता जिससे कट्टरवादी साम्प्रदायिक ताकतों की गिरफ्त कमजोर हो जाती।"[15]

(ग) क्या विभाजन सर्वोत्तम समाधान था या कमतर बुराई, जैसा कि कांग्रेसी नेता दावा करते हैं? इस समाधान के लिए बेमिसाल कीमत अदा की गई। साम्प्रदायिक विनाशलीला भयावह थी। बच्चों के टुकड़े कर दिए गए। बलात्कार के बाद महिलाओं की हत्या कर दी गई। पुरुष मौत के घाट उतार दिए गए। बेहिसाब सम्पत्ति बर्बाद कर दी गई। कुल मिलाकर 10 लाख लोग मौत के घाट उतार दिए गए 40 लाख घायल हुए और 250 लाख पूरी तरह लूट लिए गए।[16] इतिहास में शायद यह सबसे बड़ा हत्याकांड था जिसमें किसी मुक्ति युद्ध से भी ज्यादा जानें गई। यह था ब्रिटेन का शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण और कांग्रेस की अहिंसापूर्ण क्रांति। दरअसल तुच्छ चीज के लिए भारी कीमत अदा की गई थी। और इतनी भारी कीमत अदा करने के बाद हमने क्या पाया? राजनैतिक तौर पर हम एक केंद्रीयकृत राज्य और तानाशाही शासन के तहत सबको मताधिकार मिला। आर्थिक तौर पर हमें धीमे

आर्थिक विकास के साथ ही बढती गरीबी, बेरोजगारी, महगाई, आमदनी मे असमानता, कुपोषण, बीमारी आदि मिली। सास्कृतिक तौर पर हमने सभी धार्मिक आस्थाओ खासकर बहुसख्यक समुदाय की ओर अभिमुख धर्मनिरपेक्षता पाई जिसमे नित नए साप्रदायिक और जातिवादी दगे, आतकवादी हत्याएँ, गुडा गतिविधिया, भ्रष्टाचार, पक्षपात, षडयत्र, चापलूसी आम घटनाएँ है। हमें हुए राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक लाभो पर अगले अध्याया मे विचार किया गया है।

(घ) अगर विभाजन कबूल न किया जाता तो क्या हालात और बिगडते ? नही, इसके बजाय फौरी तौर पर और दीर्घकालिक लिहाज से हालात बेहतर हो जाते। फौरी तौर पर तो विभाजन के बाद हुए साप्रदायिक हत्याकाड न हुए होते और लोगो को बेघरबार होकर दर दर न भटकना पडता। इस लिहाज से सामाजिक जिंदगी मे खलल न पैदा होता। इसके साथ ही गाधी की हत्या भी न होती। साप्रदायिक दगे होते जरूर पर वे अनिश्चितकाल तक न चलत रहते। आखिर सामाजिक जिंदगी अपने ढर्रे पर लौट ही आती है। जिन्ना की मत्यु (1948) के साथ ही मुस्लिम लीग क भीतर स्थिति निश्चित रूप से बदल जाती। ज्यादा सभावना यही लगती है कि मुस्लिम बहुसख्या वाले सभी प्रातो मे स्थानीय मुसलमान नेता खुदमुख्तार बनने की होड मे लियाकत अली खा (जि ना के बाद नेता) के प्रभाव को चुनौती देते क्योकि खा का इन प्रातो म कोई जनाधार नही था। पटेल की मृत्यु (1950) के बाद काग्रेस के भीतर और मुस्लिम लीग के साथ उसके सबधो मे नए शक्ति सतुलन पैदा हो सकते थे। दीर्घकालीन स्थिति के लिहाज से भारत एक सपूर्ण सघीय राज्य बन गया होता जहा मौजूदा राजनैतिक माडलो (यानी भारत मे एकदलीय शासन और पाकिस्तान में सैनिक शासन) के बजाय बहुदलीय व्यवस्था चल रही होती। इस समय दोनो देशा द्वारा रक्षा पर खच की जाने वाली भारी रकम आर्थिक विकास में लगती। भारत चीन के बीच एक तथा भारत और पाकिस्तान के बीच तीन युद्ध न हुए होते। इन युद्धो म मरे लाग आज जिंदा हाते और इन पर खच अरबो रुपए आम आदमी की जिंदगी बेहतर बनाने मे इस्तेमाल हाते। अल्पसख्यको से भेदभाव नही होता। साप्रदायिक दगे कम हो गए होते। जातिवादी हिंसा न रहती। पजाब की मौजूदा समस्या जन्म न लेती। इदिरा गाधी की हत्या न होती। न वे और न ही राजीव कभी दिल्ली की गद्दी पर काबिज होते।

(ङ) क्या कबिनेट मिशन योजना अव्यवहाय नहीं थी ? यह नेहरू के मजबूत केंद्रीयकृत राज्य के फलसफे अथवा पटेल की ब्राह्मणी पुनरुत्थानवादी धारणा के लिहाज से पूरी तरह अव्यवहाय थी। यह लोकतान्त्रिक, सघीय और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर हो फलदायक होती। इसकी खामिया अमल की प्रक्रिया म दुरुस्त की जा सकती थी।

(9) यही वे हालात थे जिनके गर्भ से 1947 के बाद के भारत ने जन्म लिया। इन्हें समझे बिना हम भारत को ठीक से नही समझ सकते।

सदभ

1 'महात्मा गांधी', स्टनले जास, अबिंगडन कॉक्सबरी प्रेस, न्यूयाक, प० 5

2 मुशी, मौखिक इतिहास प्रतिलेख सख्या 15, एन एम एम एल, नई दिल्ली, दीवान चमनलाल, मौखिक इतिहास प्रतिलेख सख्या 220, वही

3 'हिस्टरी आफ फ्रीडम मूवमेट इन इडिया', खड 3, प० 563

4 'नेहरू—ए पालिटिकल बायाग्राफी', लदन, ओयूपी, 1959, पृ० 231

5 जवाहरलाल नेहरू—ए बायोग्राफी', बबई, 1956, प० 268

6 'ब्रिटन ऐंड मुस्लिम इडिया', लदन, हीनमैन लि०, 1963, पृ० 143

7 एस० आर० मेहरोत्रा, टुवडस फ्रीडम ऐंड पार्टिशन', विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977, पृ० 228 29

8,9 और 10 'इडिया विन्स फ्रीडम', दिल्ली, 1959

11 मिशन विद माउटबेटन', रावट हाले लि०, लदन, 1952, पृ० 46

12 हिंदुस्तान टाइम्स, 29 3 88, पृ० 11

13 प्राचीन भारत मे साहित्यिक और राजभाषा होने के आधार पर सस्कृत को सविधान म राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दन की दलील इसलिए सरासर पक्षपातपूर्ण लगती है क्योंकि फारसी और अपभ्र श को यह दर्जा नहीं दिया गया। व भी क्रमश मध्यकालीन भारत और अशोक के युग म साहित्यिक और राजभाषाएं रही है।

14 'फ्रटियर पोस्ट, पेशावर जिसे 'हिंदू' ने 29 11 87 के अक मे प० 1 पर उद्ध त किया।

15 *'द लास्ट यियस आफ ब्रिटिश इडिया', लदन, कसल, 1963*

16 '1947 म बगाल के बटवारे से करीब 40 लाख हिंदुआ को पूर्वी बगाल छोडकर भारत आना पडा और करीब 10 लाख मुसलमाना को, जिनमे ज्यादातर बिहारी थे, भारत छोडकर पूर्वी बगाल जाना पडा। इस आवाजाही म लगभग आठ लाख लोग कत्ल कर दिए गए।' (डिसमेबरमट आफ पाकिस्तान', जगदेव सिंह ब्रिग, लासर इटरनेशनल, नई दिल्ली 1988, प० 23)
उधर पजाब क्षत्र मे "मारे गए या घायल हुए लागो की सख्या अनगिनत थी। अत्यधिक अनुमान के अनुसार एक या दो लाख लोग मारे गए न्यायाधीश जी० डी० खोसला ने यह आकडा पांच लाख आका है। ब्रिटेन के दो प्रमुख इतिहासकार मौतो की तादाद दो स ढाई लाख के बीच आकते हैं शरणार्थियो की सख्या 105 लाख थी। ('फ्रीडम एट मिडनाइट, नई दिल्ली, 1976, पृ० 342)

अध्याय दो

भारत की सामाजिक व्यवस्था

1 व्यवस्था, राज्य, राष्ट्र और जनता के बीच सबध

भारतीय सामाजिक व्यवस्था स अभिप्राय है भारत का राष्ट्र राज्य। राष्ट्र[1] का मतलब है आधुनिक राज्य के रूप मे सगठित जनता (उसी तरह जसे कबीला शब्द किसी प्राचीन राज्य के रूप मे सगठित जनता के अर्थो मे इस्तेमाल किया जाता था)। हर कोई राज्य सबसे बडी सगठित सामाजिक इकाई होती है जिसे उस जमाने की जनता (जो छोटी छोटी सामाजिक इकाइयो मे भी बटी होती है, जैसे कि मौजूदा वक्त मे पार्टिया, ट्रेड यूनियने, वग, धार्मिक सप्रदाय, जातिया, परिवार और व्यक्ति) अपनी सामाजिक पूजी (मानवीय और टेक्नोनाजिकल दोनो) को क्रियाशील बनाने और विकसित करने के लिए स्थापित करती है। राज्य अमूमन (अपवादा को छोडकर) अपने सविधान और न्यायशास्त्र के जरिए अपन इलाके के भीतर सभी सामाजिक इकाइयो के हिता का प्रतिनिधित्व करता है। अमूमन अपनी जनता या उसकी बहुसख्या के हिता का प्रतिनिधित्व न करने वाला कोई राज्य ज्यादा देर टिका नही रह सकता। मौजूदा दौर मे राष्ट्र राज्य मौजूदा सामाजिक व्यवस्था का भी प्रतीक है (उसी तरह जैसे कबीलाई राज्य कबीलाई सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक हुआ करता था)।

2 राज्य और सरकार के बीच अतर

भारतीय राष्ट्र राज्य को भारतीय सविधान और न्यायशास्त्र के आधार पर एक निश्चित काल तक चुनी गई प्रतिनिधि सरकार (यानी केंद्रीय कायपालिका) चलाती है। कोई सरकार अपनी नीतियो को लागू करने और लक्ष्यो को हासिल करन के लिए शातिपूण और गैर शातिपूण दानो तरीके अख्तियार करती है। सरकार हालाकि राज्य का ही एक अग है पर मूल रूप से वह उसकी अगुआ सामाजिक इकाई (हमारे दौर मे राजनैतिक पार्टियो) के हिता का और फिर उसके समथक गुटो का प्रतिनिधित्व करती है। जाहिर है, राज्य और सरकार मे बीच अतर है। राज्य मुख्य रूप स धारणात्मक अभि यक्ति है जबकि सरकार मुख्य रूप से क्रियात्मक होती ह। इस अतर की अनदेखी नही की जानी चाहिए।

3 पार्टी तत्र पर आधारित सरकार व्यवस्था

भारत की सरकार व्यवस्था राजनैतिक पार्टियो के जरिए चलती है। ये पार्टियाँ माल के श्रम विभाजन और उससे जुडी औद्योगिक टेक्नोलाजी के अनुरूप पैदा हुई हैं। इनमे से हरेक अपने सैद्धातिक व व्यावहारिक ज्ञान के अनुसार भारत राष्ट्र को आधुनिक बनाने या उसका पूजीकरण करने की धारणा का पक्षपोषण करती है।

4 भारतीय राष्ट्र राज्य—एक पचमुखी प्रक्रिया

(क) भारतीय राष्ट्र राज्य अमूमन अदरूनी और बाहरी दो स्तरो पर क्रिया शील है जो अतरसबधित और अतरनिर्भर है। अदरूनी स्तर पर इसमे राजनतिक, आर्थिक और सास्कृतिक तितरफा प्रक्रिया की खासियत है जबकि बाहरी स्तर पर यह कूटनीति सह प्रतिरक्षा की दोतरफा प्रक्रिया स सपन्न है।

(ख) राजनीति एक आधुनिक राज्यतत्र में क्रियाशील सवैधानिक, सरचनात्मक और प्रशासकीय विचारो, गतिविधियो, सबधो व सस्थाओ को व्यक्त करती है। अथव्यवस्था मानवीय और भौतिक ससाधनो के उत्पादन व वितरण म क्रिया शील विचारो, गतिविधियो, सबधो व सस्थाओ के सचालन और प्रबधन को अभिव्यक्त करती है। सस्कृति लोगो की जीवन शैली मे क्रियाशील नैतिक, आचार-व्यवहार सबधी और सौंदयपरक विचारो, गतिविधियो, सबधो व सस्थाओ को परिभाषित करती है। कूटनीति सह प्रतिरक्षा एक तरफ विदेश नीति और दूसरी तरफ रक्षा नीति की द्योतक है।

(ग) राजनीति, अथव्यवस्था, सस्कृति और कूटनीति सह प्रतिरक्षा अतर सबधित, अतर्निभर और अटूट प्रक्रियाएं हैं क्योकि ये सभी एक विशिष्ट सामाजिक श्रम विभाजन और उससे जुडी टेक्नोलाजी क अनुरूप जन्म लती हैं। वे समान महत्व की है और उनम स हरक किसी समय विशष म मूल भूमिका अदा करती है जबकि बाकी गौण स्थिति म होती ह। इस तरह, कभी राजनीति, कभी अथव्यवस्था, कभी सस्कृति और कभी कूटनीति सह प्रतिरक्षा अगुआ स्थिति म आकर बाकियो को दिशा देती है। दुनिया म कोई ऐसा राज्य नहीं जो स्थायी तौर पर राजनीति या अथव्यवस्था या सस्कृति या कूटनीति-सह प्रतिरक्षा नीति से दिशा हासिल करता हो।

5 भारत की सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषता

भारतीय सामाजिक यवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि इसका राज्यतत्र पश्चिमी उदारवादी माडल पर आधारित है (यह बात बहुदलीय तत्र के चलने से स्पष्ट है), इसकी अथ-यवस्था कुछ-कुछ रूसी मॉडल से मिलती जुलती अति नियत्रित अथवा अफसरशाही नियोजन पर ढली है (यह बात अथव्यवस्था मे सरकारी क्षेत्र की प्रभावशाली स्थिति से स्पष्ट है), इसकी सस्कृति धर्मोमुख धमनिरपेक्षता पर आधारित है (यह बात उस सरकारी अवधारणा से स्पष्ट है जिसका दावा सभी धर्मो को समान स्तर पर रखने का है), तथा इसकी कूटनीति सह प्रतिरक्षा नीति की दिशा दक्षिण एशिया मे प्रभुत्वकारी स्थिति हासिल करने की है (यह बात पडोसी देशो से इसके तनावपूण सबधो और श्रीलका के प्रति इसकी मौजूदा नीति से स्पष्ट है)।

6 इस व्यवस्था के बारे में प्रमुख सवाल

(क) भारत की सामाजिक व्यवस्था के बारे म गौरतलब प्रमुख सवाल यह

है कि 41 साल के दौरान इस व्यवस्था और इसकी उत्तरोत्तर सरकारो ने क्या ठोस नतीजे हासिल किए हैं। इस सवाल को भारत की सामाजिक व्यवस्था के चार मुख्य क्षेत्रा (यानी राजनतिक आर्थिक, सास्कृतिक और कूटनैतिक सह प्रतिरक्षात्मक) के सदभ म तितरफा कसौटी के आधार पर ही ठीक तरीके से हल किया जा सकता है। इसके मुताबिक (i) क्या वादे किए गए थे (यानी सिद्धात) और उन पर कितना अमल हुआ (यानी व्यवहार), (ii) इसी प्रकार के दूसरे देशो के मुकाबले इसकी उपलब्धियाँ कितनी रही, तथा (iii) भारतीय जनता ने इसके लिए कितना मूल्य चुकाया ?

(ख) अगले चार अध्याया मे इस अवलोकन प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही हम भारत की सामाजिक व्यवस्था और इसकी उत्तरोत्तर सरकारो की उपलब्धियो और खामियो को जानन की स्थिति म होग।

सदभ

1 राष्ट्रीयता उस कहते हैं जा अपना राज्य स्थापित करने की प्रक्रिया मे हो या जिसने किसी राष्ट्र राज्य के भीतर उप राष्ट्रीय दर्जा स्वीकार कर लिया हो, जसे कि बहुत सी राष्ट्रीयताआ ने भारत म कर लिया है ।

अध्याय तीन
भारतीय राज्यतन्त्र

इसस अभिप्राय 1947 उपरात भारत मे सवैधानिक, सरचनात्मक और प्रशासकीय विकास की प्रक्रिया से है।

1 सविधान

(क) सवैधानिक तौर पर, भारतीय सविधान वह मूल सहिता है जिसके आधार पर भारत का शासन चलता है अथवा यह भारतीय राज्य के मूल सिद्धात को अभिव्यक्त करता है।

(ख) सविधान की प्रस्तावना का आगाज इन शब्दो स होता है 'हम भारतीय लोग भारत को बनाने का सकल्प लेते हैं।" इसका मतलब है कि भारतीय सविधान यहाँ की जनता की सहमति अथवा मौन सम्मति के आधार पर बना है। लेकिन हकीकत यह है कि इस सविधान के लिए न तो जनमत सग्रह और न ही पूर्ण मताधिकार वाले सीधे चुनाव के जरिए भारतीय जनता की राय ली गई है। इस सविधान सभा न बनाया था जो पूरी तरह प्रतिनिधि सस्था नही थी। उसम रजवाडा रियासतो के नामजद प्रतिनिधियो के अलावा बाकी सदस्य कुल वालिग मताधिकार के करीब एक तिहाई पर आधारित प्रातीय विधानसभाओ द्वारा परोक्ष रूप स चुने गए थे। सविधान की रूपरेखा मुख्यत भारत सरकार के 1935 के अधिनियम पर आधारित है। दर-असल इस काग्रेस पार्टी का एक दस्तावेज कहा जा सकता है।

(ग) सुप्रीम कोट की राय म सविधान की प्रस्तावना ही उसकी प्राणात्मा है। लेकिन यह प्राणात्मा स्वतः स्पष्ट नही है। सविधान अपनी प्रस्तावना मे दज नौ मूल सिद्धातो—प्रभुसत्तासपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपक्ष, लोकतत्र, गणतत्र न्याय, आजादी, समानता और भ्रातत्व म स किसी की भी कही व्याख्या नही करता। सुप्रीम कोट ने भी इनमे किसी मूल सिद्धात को स्पष्ट नहीं किया है।

(घ) सवधानिक विशेषज्ञो के अनुसार भारतीय सविधान की पाच मूल अभिधारणाए है। य है—सघीय व्यवस्था, धर्मनिरपक्षता, समाजवाद, ससदीय लोकतत्र और न्यायिक समीक्षा लेकिन समूचे सविधान मे सघीय व्यवस्था का कही जिक्र नही। हा, पहले अनुच्छेद मे भारत को 'राज्यो का एक सघ' घोषित करके इसे सघीय सविधान जरूर बनाया गया है। पहले 25 साल तक तो इसमे 'समाजवादी' और धर्म-निरपेक्ष शब्द भी दज नही थ और अब उन्हें शामिल किए जाने के 13 साल बाद भी इसमे अस्पष्टता ज्यो की त्यो बरकरार है।

(ङ) सविधान के चौथे भाग म राज्य नीति के निदेशक सिद्धात की श्रेणी म

अनेक समतावादी सिद्धांत दर्ज हैं जो जनता को न्याय प्रदान करने के लिए तो लागू नहीं होते पर 'देश का शासन चलाने के लिए बहुत जरूरी है।' फिलहाल वे महज दिखावटी चीजें हैं।

(च) संविधान का पांचवां भाग (अध्याय 1) सारी सत्ता का केंद्र प्रधान मंत्री को बनाता है। इसके अलावा यह संसद की अनदेखी करके राष्ट्रपति के नाम पर अध्यादेश जारी करने का अधिकार भी (अध्याय 3) मंत्रिमंडल को देता है। प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल को सर्वशक्तिमान बनाकर यह संसद और न्यायपालिका को कार्यपालिका के व्यापक अधिकारों पर अंकुश लगा पाने में असमर्थ बना देता है। यह राष्ट्रपति के कामकाज की कोई स्पष्ट व्याख्या न करके उसे संसदीय परंपराओं के सहारे छोड़ देता है।

(छ) संविधान का छठा भाग (अनुच्छेद 163) राज्य विधायिका या राज्य सरकार के मामले में स्वनिर्णय का अंतिम अधिकार राज्यपाल को देता है। यह अलोकतांत्रिक मानदंड है जो एक नामजद व्यक्ति को निर्वाचित प्रतिनिधियों से भी ऊपर स्थान देता है।

(ज) नौवां भाग (अनुच्छेद 245 63), जो संसद को राज्य सूची वाले मामलों में कानून बनाने का अधिकार देता है और पहली व तीसरी सूची में अनुल्लिखित बाकी अधिकारों को भी संसद को ही सौंपता है, सत्ता का केंद्रीयकरण करके भारत की संघीय व्यवस्था को नाममात्र की बना देता है।

(झ) सतरहवां भाग (अनुच्छेद 343 44), जो हिंदी को भारत की सरकारी भाषा घोषित करता है, वास्तविकता के प्रतिकूल है। हकीकत में अंग्रेजी और हिंदी दोनों सरकारी भाषाओं के तौर पर इस्तेमाल हो रही हैं और यही इस समस्या का एकमात्र उचित समाधान है।

(ञ) अठारहवां भाग (अनुच्छेद 352 60) तीन किस्म की इमरजेंसी की कल्पना करते हुए केंद्र को असीम अधिकार प्रदान करता है तथा इस तरह लोगों को सभी मूल अधिकारों और राज्यों को सभी वैधानिक अधिकारों से वंचित करता है।

(ट) बहुसंख्यक समुदाय के कुछ रीति रिवाजों (देखें पृ० 18) को संवैधानिक दर्जा देना संविधान द्वारा उस समुदाय की तरफदारी और संविधान की धर्मनिरपेक्षता की धर्मोन्मुख प्रकृति को ही दर्शाता है।

(ठ) संविधान की मूल त्रुटि यह है कि सत्ता को शासनाध्यक्ष के हाथों में अति केंद्रित करके यह सभी प्रकार की सरकारी गतिविधियों में जनता की भागीदारी और सरकार की जनता के प्रति (चुनाव प्रक्रिया को छोड़) जवाबदेही की पूरी तरह अनदेखी करता है।

2 संरचना

संरचनात्मक तौर पर, 1947 उपरांत भारतीय राज्यतंत्र कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के तीन सरकारी अंगों के साथ साथ प्रेस और दलीय

प्रणाली के दो गैर सरकारी अगा से गठित है। कायपालिका राज्य का वह अग है जिस पर सविधान और दूसरे कानून लागू करने की जिम्मेदारी होती है। विधायिका का काम राज्य के लिए कानून बनाना है जबकि न्यायपालिका का उत्तरदायित्व न्याय प्रदान करना है। प्रेस सभी अखबारो और पत्रिकाओ को दिया गया सामूहिक नाम है। दलीय प्रणाली मे राजनैतिक दल आते हैं जिनम से हरेक दल विशिष्ट कायक्रम और नीतियो पर आधारित लोगो के एक समूह से गठित होता है। लोकसभा मे बहुमत वाला दल कायपालिका का काम अजाम देता है। कायदे के मुताबिक राज्य के तीनो अग समान महत्व के होने चाहिए पर हकीकत म कायपालिका प्रमुख हैसियत अख्तियार करती है और प्रधानमत्री सत्ता का केंद्र होता है जिसस राज्य के सभी अगो के लिए उसका अनुकरण करने की स्थिति बन जाती है।

3 प्रशासकीय प्रक्रिया

प्रशासकीय तौर पर, 1947-उपरात भारतीय राज्यतत्र की प्रक्रिया शुरू हुए अब 41 वष हो गए हैं। इस दौरान आठ राष्ट्रपति और छह प्रधानमत्री विभिन्न मौको पर दो सर्वोच्च कायकारी पदो पर विराजमान रहे है। भारतीय जनता ने अलग-अलग समय पर आठ लोकसभाए चुनी। ससदीय क्षेत्र म अमूमन काग्रेस ही छायी रही। सिफ 1977 और 1980 के बीच के थोडे अर्से म जनता पार्टी करीब ढाई साल तक कुर्सी पर रही। भारत के पहले प्रधानमत्री जवाहरलाल नेहरू (काग्रेस) लगातार 16 वष (1947 1964) तक इस सर्वोच्च कायकारी पद पर बने रहे। उनकी मौत के बाद लालबहादुर शास्त्री (काग्रेस) उनके उत्तराधिकारी बने। 1966 शुरू होते ही वे भी चल बसे। तब नेहरू की बेटी इदिरा गाधी (काग्रेस) प्रधानमत्री बनी और 1966 से 1977 तक इस पद पर रही। 1977 के लोकसभा चुनाव म काग्रेस की हार के बाद पहले जनता पार्टी के मोरारजी देसाई (1977 79) और फिर जनता पार्टी से ही अलग हुए एक गुट के चरणसिंह (1979 80) इस पद पर विराजमान हुए। 1980 के आम चुनाव म काग्रेस की जीत से इदिरा गाधी फिर सत्ता मे आइ और 1984 मे उनकी हत्या के बाद उनके बेटे राजीव गाधी ने आठवी लोकसभा के चुनाव मे इस पद की बागडोर सभाली।

4 पूव 1947 के राज्यतत्र से तुलना

(क) पीछे की ओर झाकें तो पूव 1947 भारतीय राज्यतत्र ने 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत सिफ 30 फीसदी भारतीय जनता को मताधिकार दे रखा था (1919 के अधिनियम के तहत एसे 7 फीसदी ही लोग थे)। केंद्रीय विधानसभा के अधिकार सीमित थे। ब्रिटिश ताज के कायकारी प्रतिनिधि वाइसराय के पास वीटो अधिकार हुआ करते थे। भारत का प्रशासनिक बटवारा किसी युक्ति

सगत सिद्धात पर आधारित नही था। प्रात बहुभाषायी थे और 565 देशी रियासतो मे रजवाडो का राज था। न्यायपालिका अद्ध स्वतत्र थी क्योकि न्यायाधीश वाइसराय के रहमोकरम पर ही पद पर टिके रहते थे। राजनैतिक दलो म काग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, काग्रेस समाजवादी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, फारवड ब्लाक, अकाली दल आदि प्रमुख थे। कुछ पाबदियो सहित प्रेस अमूमन आजाद था।

(ख) पूव-1947 पृष्ठभूमि मे परखें तो 1947 उपरांत भारतीय राज्यतत्र का कामकाज—यानी सबके लिए मताधिकार, ससद की वैधानिक प्रभुसत्ता, कार्यपालिका की ससद के प्रति जवाबदेही, न्यायपालिका की आजादी, बहुदलीय व्यवस्था और जागरूक प्रेस की भूमिका, रजवाडा रियासतो का भारत सघ मे विलय, पश्चिम पाकिस्तान से आए लाखो शरणार्थियो का पुनर्वास, राज्यो का भाषायी आधार पर पुनगठन आदि निश्चय ही राजनैतिक उपलब्धिया है।

5 भारतीय राज्यतत्र के मूल्याकन की कसौटी

भारतीय राज्यतत्र के कामकाज का मूल्याकन करते वक्त एक ही इकाई के भूत और वतमान की तुलना कोई ज्यादा कारगर कसौटी नही है। इस आधार पर भारत मे ब्रिटिश उपनिवेशी शासन का यह दावा बिलकुल उचित था कि उसने अपने पूववर्ती मुगल राज्यतत्र के मुकाबले उच्च स्तर का राज्यतत्र विकसित किया है पर भारतीय जनता ने इस ब्रिटिश दावे को भारत की सामाजिक उन्नति का मूल्याकन करने की उचित कसौटी नही माना। भारत की आजादी की माग इस मूल्याकन पर आधारित थी कि भारत मे ब्रिटिश शासन भारतीय जनता के नही बल्कि ब्रिटिश ताज के प्रति उत्तरदायी है, यह तानाशाही, उपनिवेशी शासन भारत के मानवीय एव भौतिक स्रोतो को भारत के नही बल्कि ब्रिटेन के हितो म इस्तेमाल करता है, तथा इस प्रकार वह भारत को (राजनतिक, आर्थिक व सास्कृतिक तौर पर) विकसित करने और उसकी अतर्निहित शक्ति को वास्तविक रूप देने मे अक्षम है। जाहिर है उपनिवेशी शासन पर लागू की जाने वाली कसौटी राष्ट्रीय राज्यतत्र पर लागू नही की जा सकती और राष्ट्रीय राज्यतत्र का मूल्याकन उससे उपनिवेशी शासन की तुलना करके नही किया जा सकता। तकसगत रूप स, 1947-उपरात भारतीय राज्यतत्र को परखने का उचित मापद ड एक तितरफा कसौटी ही हो सकती है (जसे कि अध्याय 2, उपशीषक 6 मे बताया गया है)। यानी (1) क्या वादे किए गए थे और उन पर कितना अमल हुआ, (ii) इसी प्रकार के दूसरे राज्यतत्रो की तुलना मे इसकी उपलब्धिया कितनी रही, और (iii) भारतीय जनता ने इसके लिए कितना मूल्य चुकाया।

6 सविधान के मूल उद्देश्यों की पूर्ति—
भारतीय राज्यतत्र की असल परीक्षा

इस तरह भारतीय राज्यतत्र और इसके विभिन्न अगो को उपरोक्त कस

पर परखने के लिए हम इसके मूल उद्देश्यो से शुरुआत करते है । ये मूल उद्देश्य मशोर म भारतीय सविधान म मिलत हैं । इसम कहा गया है कि 'हम भारतीय लोग भारत को एक प्रभुसत्तासपन्न, लोकतान्त्रिक, समाजवादी व धर्मनिरपेक्ष गणतत्र बनाने और अपने सभी नागरिको क लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनतिक याय, विचारो, अभिव्यक्ति, आस्था, धम व श्रद्धा की आजादी, पद व अवसर की समानता प्राप्त तथा उनम भ्रातृत्व को बढ़ावा देकर व्यक्ति क गौरव और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित बनाने का सकल्प लेते हैं।" सवधानिक तौर पर हालांकि इन मूल उद्देश्यो की कोई परिभाषा नही दी गई है, फिर भी ये हम यह परखने म सहायता करते है कि भारतीय राज्य तत्र के विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी अगो ने किस हद तक भारतीय सविधान की मूल भावना को अमल म उतारा है ।

7 कार्यपालिका

(क) उक्त सवधानिक उद्देश्यो की पूर्ति क लिए पहली पूव शत यह है कि लोकतान्त्रिक ढाचे और व्यवहार वाला एक सुगठित शासक दल हो । जाहिर है अगर शासक दल सगठन, सोच और अमल म सचमुच लोकतान्त्रिक सस्था की तरह नहीं चलता तो उक्त किसी भी उद्देश्य की ईमानदारी स पूर्ति नही हो सकती । और इस सबध म हम पाते हैं कि 1950 म पटल की मौत के बाद नेहरू ने काग्रेस के अदर बहस और वाद विवाद खत्म करने की शुरुआत की। उन्होंने 1951 म पुरुषोत्तम दास टडन (पटेल समथक नेता) को काग्रस अध्यक्ष पद म इस्तीफा देन क लिए मजबूर कर दिया और खुद प्रधानमत्री के साथ-साथ पार्टी अध्यक्ष भी बन गए। इसक बाद उनके जीवन काल म बनन वाले सभी काग्रेस अध्यक्ष, उनकी बेटी इदिरा गाधी समेत, नेहरू के ही करीबी सहयोगी थ । काग्रेस म आतरिक पार्टी लोकतन्त्र क धीरे धीरे खात्मे का ही नतीजा था कि 1950 वाल दशक के अत म राजगोपालाचाय नेहरू की साझा खेती की नीति का विरोध करने के लिए काग्रेस क भीतर असतुष्टो को इकट्ठा करने के बजाय स्वतत्र पार्टी बनाने को बाध्य हुए । फिर 1963 म कामराज योजना के तहत मोरारजी देसाई समत कई मन्त्रियो को हटाना असतुष्टो को कमजोर करने के लिए नेहरू की ही एक चाल थी । लालबहादुर शास्त्री ने भी अपने सीमित तरीके से मोरारजी देसाई और इदिरा गाधी सरीखे असतुष्ट गुटो को कमजोर करन के लिए कमोबेश यही रुख अख्तियार किया । इदिरा गाधी ने काग्रस क भीतर मत भेद रखने के अधिकार को बिलकुल ही खत्म कर दिया, अपनी सत्ता को चुनौती दे रहे सभी लोगो (कामराज देसाई, अतुल्य घोष, पाटिल निजलिगप्पा आदि) को निकाल बाहर किया काग्रेस को दो बार (1969 और 1978 म) तोड़ा पार्टी म चुनाव कराने (1973 से 1984) बद कर दिए और काग्रेस पदाधिकारियो को नामजद करने का तरीका अपनाया । इस तरह इदिरा गाधी की बनाई नई काग्रेस व्यक्ति का तमाशा बन गई । राजीव ने काग्रेस की व्यक्ति पूजा की सस्कृति को

और आगे बढ़ाया। वे निजी प्रभुत्व की ज्यादा लालसा रखने लगे और मतभेदों के प्रति ज्यादा असहनशील हो गए।

(ख) सवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दूसरी पूर्व शर्त यह है कि राष्ट्रीय स्तर पर लोगों के लिए दो दलों का विकल्प हो। यानी शासक दल का व्यवहार्य राष्ट्रीय विकल्प हो। जाने माने ब्रिटिश सवैधानिक वकील आइवर जेनिंग्स के मुताबिक, 'विपक्ष का होना भी लगभग सरकार जितना ही महत्वपूर्ण है। विपक्ष के बिना लोकतंत्र नहीं होता। वह लोकतान्त्रिक राजनतिक प्रक्रिया का निश्चित और आवश्यक अंग है।" इस संबंध में भी हम पाते हैं कि नेहरू ने ही विपक्षी पार्टियों पर भारत की तरक्की के रास्ते में रुकावट डालने के मिथ्यारोपों की बरसात करके (जैसे कि कम्युनिस्ट पार्टी रूस की दलाल, जनसंघ प्रतिक्रियावादी और स्वतंत्र पार्टी अमेरिका समर्थक गुट है) और फिर 1959 में केरल की बहुमत वाली कम्युनिस्ट सरकार अस्थिर बनाने (वहाँ एक आदोलन को गुप्त शह देकर) के बाद बर्खास्त करके विपक्ष को असहनीय मानने की शुरुआत की। इससे पहले 1954 में उन्होंने तत्कालीन पेप्सू राज्य की अकाली सरकार को बर्खास्त कर दिया था। इंदिरा गांधी ने हमेशा विपक्ष पर राष्ट्रविरोधी, जनविरोधी और महज 'इंदिरा हटाओ' में दिलचस्पी रखने का आरोप लगाया। *वे हमेशा एक या दूसरे विपक्षी दल को फुसलाकर या दबाकर खत्म करने की* ताक में रहती थी। उनके शासनकाल में विभिन्न राज्यों की विपक्षी सरकारों का बर्खास्त किया जाना (मसलन 1969 में बंगाल, 1983 में जम्मू कश्मीर और आंध्र आदि) आम बात थी। मुठभेड़ की उनकी नीति ने विभिन्न लोकतान्त्रिक संस्थाओं खास कर दलीय प्रणाली को गंभीर नुकसान पहुँचाया है। राजीव ने मुठभेड़ की इस नीति को जोर शोर से आगे बढ़ाया है। उन्होंने 1984 का अपना चुनाव अभियान इस आरोप से शुरू किया कि विपक्ष की सिख उग्रवादियों से साठगांठ है। तब से वे अनगिनत बार विपक्ष को नम और गम छन्नी से पीटते आए हैं (कई बार उन्होंने अवज्ञाकारी विपक्षी सरकारें गिराने की धमकी दी और कई बार उन्हें बातचीत के लिए बुलाया)। उनका मकसद भारत में एक दल के प्रभुत्व वाली व्यवस्था और शासक दल के भीतर एक व्यक्ति का प्रभुत्व बनाए रखना है।

(ग) सवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि निचले स्तर पर नीति बनाने और लागू करने में लोगों की भागीदारी हो। इस संबंध में हम पाते हैं कि पहले नेहरू और फिर जनता पार्टी के मोरारजी देसाई और लोकदल के चरणसिंह समेत उनके सभी उत्तराधिकारियों ने इस लोकतान्त्रिक पूर्व शर्त की अनदेखी की। इस सिलसिले में तीन बातें काबिलेगौर हैं। पहली, संविधान में चुनाव के समय को छोड़ कहीं राजनैतिक प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी की गारंटी नहीं दी गई है। दूसरी 1947 के बाद की हर सरकार ने लोगों को राजनैतिक प्रक्रिया से बाहर रखा है। तीसरी, निश्चित तिथि गुजर जाने के बाद भी वर्षों तक पंचायतों और स्थानीय निकायों के चुनाव नहीं कराए जाते।

(घ) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि चुनाव प्रक्रिया निष्पक्ष और निष्कपट बने। इस संबंध में हम पाते हैं कि नेहरू की अगुआई में कांग्रेस ने ही चुनाव प्रक्रिया में सबसे पहले साम्प्रदायिकता, जात-पात और धन गुंडों प्रशासन के त्रिकोण के तत्व दाखिल किए। उम्मीदवारों के चयन में कांग्रेस ने उनकी जीतने की क्षमता को ही एकमात्र कसौटी माना और अभी भी यही सिल सिला चला आ रहा है। किसी उम्मीदवार की जाति और धर्म को उसके चरित्र से भी महत्वपूर्ण समझा गया और अभी भी समझा जाता है। चुनावी जीत मुख्य तौर पर जाति धर्म और धन एवं गुंडा शक्ति के आधार पर ही तय होने लगी। इस चुनाव प्रक्रिया को इंदिरा कांग्रेस से और प्रोत्साहन मिला तथा राजीव के शासन में यह अपने पूरे शबाब पर है। इस प्रक्रिया को जारी रखने में विपक्ष का भी कुछ योगदान है क्योंकि वह भी कई बार कांग्रेस के इन तरीकों की नकल करता है। इस तरह भारत में हर स्तर पर चुनाव प्रक्रिया बहुत हद तक साम्प्रदायिकता, जात पात, धन और अपराधी तत्वों से प्रभावित है। ऐसी चुनाव प्रक्रिया को काबू में रखने और इसकी अगुआई के लिए सत्तारूढ़ कांग्रेस इ कट्टरवाद के प्रति आम तौर पर और बहुसंख्यक समुदाय के कट्टरवाद के प्रति खास तौर पर तुष्टिकरण की नीति अपनाती है। आमतौर पर कट्टर वाद को खुश करने के प्रयास में वह भिंडरावाले या इमाम बुखारी जैसे धार्मिक अल्प संख्यकों के नेताओं से साठ गाठ करती है अथवा अकाली दल या मुस्लिम लीग से गठ जोड़ करती है। पर बहुसंख्यक समुदाय के कट्टरवाद को खुश करने के लिए वह अक्सर अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति भेदभाव की नीति अख्तियार करती है। इसका नतीजा यह होता है कि अल्पसंख्यक समुदाय अलग थलग पड जाते है पंजाब जैसी अलगाववादी समस्या या राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद जैसे विवाद उठ खड़े होते हैं और इस तरह राष्ट्रीय एकता कमजोर पड़ती है।

(ङ) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि उच्च पदों पर भ्रष्टाचार बंद हो। इस संबंध में भी हम देखते हैं कि नेहरू ने ही राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री पदों को किसी भ्रष्टाचार विरोधी पंचाट के दायरे में नहीं आने दिया। उन्होंने चोरबाजारियों को चौराहे पर फांसी लटकाने की लच्छेदार बातें बघा रने के बावजूद उनके खिलाफ कोई कारगर कदम नहीं उठाया। इतना ही नहीं, नेहरू ने उन सभी लोगों (प्रताप सिंह कैरों बख्शी गुलाम मुहम्मद और बीजू पटनायक) को संरक्षण दिया जिनके खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों के प्रति शास्त्री ने बतौर गृह मंत्री उनका ध्यान खींचा था। उन्हीं के शासनकाल में लंदन में तत्कालीन भारतीय उच्चायुक्त कृष्ण मेनन से संबंधित 1950 के जीप घोटाले का मामला 1955 में बिना किसी को दोषी ठहराए बंद कर दिया गया। उन्होंने कृष्ण मेनन को केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल करने के बारे में मौलाना आजाद की आपत्तियों को रद्द कर दिया। के० डी० मालवीय ने जिन्हें भ्रष्टाचार के एक आरोप में मंत्रिमंडल से इस्तीफा देना पड़ा, बाद में कहा कि 'उत्तर प्रदेश में मेरे राजनैतिक प्रतिद्वंद्वी शास्त्री का नेहरू पर इतना

दवाव था कि उन्होंने मुझसे इस्तीफा मांग लिया।" और फिर, 1960 के आसपास जब आईबी द्वारा नेताओं और बड़े व्यावसायिक घरानों के संबंधों के बारे में जांच से यह पता चला कि 36 कांग्रेस सासद एक ही व्यावसायिक घराने से पैसा पाते हैं तो नेहरू ने कोई कारवाई नहीं की। इंदिरा गांधी के शासन में भ्रष्टाचार तो जिंदगी का तौर-तरीका ही बन गया। उन्होंने यह कहकर भ्रष्टाचार का अप्रत्यक्ष समर्थन किया कि यह तो ऐतिहासिक होने के साथ साथ अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम है। यह रुख उच्च पदों में भ्रष्टाचार के आरोपों पर उनकी उपेक्षापूर्ण प्रतिक्रिया से झलकता है। ऐसे कई मामले हैं। मसलन विपक्षी दलों द्वारा बंसीलाल के खिलाफ दिया गया आरोपपत्र जिसमें यह आरोप भी था कि उन्होंने संजय गांधी की मारुति परियोजना के लिए सस्ते दाम पर जमीन दी थी, ललितनारायण मिश्र और बाद में भजनलाल के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोप, तुलमोहनराम वाला मामला, नागरवाला का मामला जिसमें उसने स्टेट बैंक के खजांची से इंदिरा के नाम पर 60 लाख रु० हासिल कर लिए थे और बाद में जिसकी मृत्यु रहस्यमय हालत में जेल में हो गई थी, संजय की मारुति कार कंपनी के लिए भारी रकम जमा किए जाने के आरोप, कंपनियों द्वारा कांग्रेस को दिया गया चंदा जिसके मुताबिक 1962 और 1968 के बीच कंपनियों की ओर से 47 दलों को दिए गए 260 लाख में से 205 लाख रु० सत्तारूढ दल को ही मिले थे।[1] राजीव प्रशासन ने तो भ्रष्टाचार के सारे रिकार्ड मात कर दिए हैं। आए दिन बोफोर्स, एचडब्ल्यूडी पनडुब्बी सौदा, वेस्टलैंड हेलिकाप्टर आदि जैसे नए घोटाले सुनने को मिलते है। सबसे ताजा सबूत तो हाल ही का मानहानि विधेयक था जो असल में भ्रष्टाचार छिपाओ विधेयक बनता। इसका मकसद प्रेस का गला घोटना था ताकि वह शासक दल के कारनामों का भंडाफोड न कर पाए।

(च) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि संविधान की जीवात्मा और राज्य कानूनों का कड़ाई से पालन हो। इस संबंध में हम पाते हैं कि शासनाध्यक्ष की कुर्सी पर बैठे लगभग सभी लोगों और उनके अपने शासक दलों ने इस सिद्धांत के उलट मानदंड अपनाए हैं। पहली बात तो यह है कि जात पात, सांप्रदायिकता और धन गुंडा शक्ति की राजनीति अपनाकर हर शासक दल ने जनता में सांप्रदायिक चेतना जगाए रखी, राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में बाधा डाली और इस तरह भारतीय संविधान व राज्य कानूनों का उल्लंघन किया। दूसरे, राज्याध्यक्ष संबंधी स्वस्थ परंपराओं की अवहेलना करते हुए केंद्र में हर सरकार ने इस पद की गरिमा को धीरे धीरे कम करने में हिस्सा डाला है। नतीजतन, 1975 की इमरजेंसी की घोषणा पर तत्कालीन राष्ट्रपति ने किसी आज्ञाकारी की तरह आधी रात को दस्तखत कर दिए इसके बाद 1979 में संजीव रेड्डी और मोरारजी के बीच तनाव और फिर 1987 में ज्ञानी और राजीव के झगड़े ने स्थिति अधिक बिगाड़ दी, हाल ही में मास्को की एक सांस्कृतिक सभा में राष्ट्रपति वेंकटरामन ने प्रधानमंत्री का अभिनंदन संदेश पढ़कर तो हास्यास्पद हालात पैदा कर दिए। इस तरह राष्ट्रपति पद को रबड़

स्टाप बना दिया गया है। तीसरे, शासनाध्यक्ष के हाथों में कार्यकारी अधिकारों का अधिकेंद्रण करके हरेक शासक दल ने प्रधानमंत्री को भारत का सर्वोच्च शासक बनाया है। नतीजतन, सभी मंत्री पिछलग्गू बनकर रह गए हैं। यह स्थिति उस धारणा से कतई मेल नहीं खाती जिसके मुताबिक प्रधानमंत्री समान हैसियत वालों म प्रथम होता है। 1955-56 में वित्तमंत्री रहे सी० डी० देशमुख ने 1956 के अपने इस्तीफे में[2] नेहरू पर मंत्रिमंडल से अक्खड और असंवैधानिक तरीके से पेश आने का आरोप लगाया था। इंदिरा गांधी ने मंत्रिमंडल की सामूहिक जिम्मेदारी का सिद्धात ही लगभग त्याग दिया (मसलन 1975 में मंत्रिमंडल की मंजूरी के बिना इमरजेंसी लगाने का फैसला)। चौथे शासक दल के वफादार नेताओं को राज्यपाल मुकर्रर करके और गए गुजरे नेताओं (मसलन एम०पी० जैन, रामलाल, कुमुदबेन जोशी, वसंतदादा पाटिल आदि) को इस पद पर बिठाकर हरेक केंद्र सरकार ने अपनी नापसंदीदा राज्य सरकारों का कार्यकाल घटाने म राज्यपालों का इस्तेमाल किया है। सरकारिया आयोग द्वारा हाल ही म किए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 1947 और 1984 के बीच मुकर्रर हुए राज्यपालों में 60 फीसदी अपनी नियुक्ति से पहले राजनीति म सक्रिय थे। पाचवें विभिन्न काग्रेस सरकारों ने दिल्ली से मुख्यमंत्री नामजद करके भारतीय राज्यतंत्र की सघीय प्रणाली को कमजोर किया है। छठे, संगठित उद्योग पर धीरे धीरे अपना नियंत्रण बढाकर जनता और लोकदल सहित सभी केंद्र सरकारों ने राज्यों के अधिकारों का अतिक्रमण किया है (इस समय 93 फीसदी संगठित उद्योग केंद्र के अधीन है जबकि राज्यों के पास महज 7 फीसदी रह गया है,[3] हालांकि शुरू में रक्षा और उससे जुड़े उद्योगों को छोड़ उद्योग, वाणिज्य और व्यापार के सभी क्षेत्र राज्य सरकारों के दायरे मे आते थे)। इस तरह उन्होंने भारत के सघीय राज्यतंत्र को कमजोर बनाया है। खासकर इंदिरा गाधी ने गैर काग्रेस इ राज्य सरकारों का तख्ता पलटकर और काग्रेस इ के अपने नापसंदीदा मुख्यमंत्रियों को हटाकर भारत के संस्थागत सघीय ढाचे पर प्रहार किए है। सातवें संघ लोक सेवा आयोग की 1986 87 की सालाना रिपोर्ट और उससे पहले भी कई रिपोर्टों मे दर्ज उसकी 50 फीसदी सिफारिशें रद्द करके विभिन्न सरकारों ने इस वैधानिक संस्था का अवमूल्यन किया है। आठवें, प्रशासन के रोजमर्रा काम म दखल देकर सत्तारूढ़ काग्रेस ने इस संस्था की निष्पक्षता को खत्म कर दिया है। नौवें, काग्रेस के हरेक प्रधानमंत्री ने अपने हाथो मे अत्यधिक सत्ता सकेंद्रित करके अपने निजी सचिवालयों को केंद्रीय मंत्रिमंडल और मुख्यमंत्रियो से ऊपर संविधानेतर संस्थाओं मे बदल दिया। इंदिरा गाधी ने तो अपने बेटे संजय गाधी को भी यह रुतबा दे रखा था।

(छ) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि लोक नैतिकता के यथोचित मानदंडों का पालन हो। इस संबंध में हम पाते हैं कि पुरानी शाही परपराएं जारी हैं। पहली बात तो यह कि इन परंपराओं की अभिव्यक्ति सत्तारूढ काग्रेस इ द्वारा केंद्र मे खानदानी शासन स्थापित करने से होती है और अब तो

दूसरे दलों (मसलन लोकदल, नेशनल कांफ्रेंस, अन्नाद्रमुक, तेलुगुदेशम आदि) में भी यह रोग लग गया है। नेहरू ने ही 1959 में इंदिरा गांधी को कांग्रेस अध्यक्ष बनवाकर इस प्रक्रिया की शुरुआत की। इसमें तब सेवानिवृत हो रहे अध्यक्ष यू० एन० ढेबर ने इंदिरा को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करके उनकी सहायता की। इंदिरा के अध्यक्ष पद पर रहते हुए नेहरू ने 'अपनी नेता' बताकर उन्हें बढ़ावा दिया। इसके बाद नेहरू ने उन्हें अखिल भारतीय नागरिक परिषद की अध्यक्ष मनोनीत किया। यह सर्वोच्च राष्ट्रीय अर्द्ध सरकारी संस्था सरकारी नीतियों के पक्ष में समर्थन जुटाने के लिए 1962 में चीन भारत सीमा युद्ध के बाद बनाई गई थी। युद्ध के बाद अपनी प्रतिष्ठा कम हो जाने के कारण वे इंदिरा को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा का स्पष्ट संकेत नहीं दे पाए। लालबहादुर शास्त्री ने जयप्रकाश नारायण को बताया था[4] कि नेहरू अपनी बेटी को उत्तराधिकारी बनाने की प्रबल इच्छा रखते हैं। मोरार जी देसाई ने भी इस बात की पुष्टि की है कि नेहरू ने अपने अंतिम दिनों में उन्हें यू० एन० ढेबर के माध्यम से एक संदेश भेजा था जिसके मुताबिक अगर वे इंदिरा को उत्तराधिकारी मान लें तो मंत्रिमंडल में उन्हें दूसरा स्थान दिया जा सकता है।[5] बाद में इंदिरा गांधी ने बतौर प्रधानमंत्री अपने छोटे बेटे संजय को उत्तराधिकार के लिए तैयार किया और उनकी मृत्यु के बाद बड़े बेटे राजीव को इस काम के लिए प्रशिक्षित किया। दूसरे, पुरानी शाही परंपराओं की अभिव्यक्ति चापलूसी की नई संस्कृति के उदय से होती है जिससे कांग्रेस के भीतर और जनता में व्यक्तिपूजा को बल मिला। 'इंदिरा भारत है और भारत इंदिरा' का नारा संस्कृति की इसी भावना का सटीक प्रतीक है। तीसरे, षड्यंत्र और तिकड़म की राजनीति में भी इसकी अभिव्यक्ति मिलती है। इसी प्रकार की राजनीति के चलते इंदिरा गांधी ने 1969 में पहले राष्ट्रपति पद के लिए संजीव रेड्डी के नाम का प्रस्ताव किया लेकिन बाद में अंतरात्मा की आवाज पर वोट देने का बहाना बनाकर उनका विरोध करते हुए वी० वी० गिरि का समर्थन किया। इसी प्रकार की राजनीति की झलक पहले इंदिरा और अब राजीव द्वारा अस्थिरता के खतरे की हाय-तौबा मचाने से मिलती है। इसका मकसद विभिन्न मोर्चों पर अपनी विफलताओं से जनता का ध्यान हटाना रहा है। चौथे, इसकी अभिव्यक्ति कांग्रेस की काले धन पर निर्भरता में मिलती है जिससे भारत में चहु ओर भ्रष्टाचार फला फूला है। पांचवें, इसकी अभिव्यक्ति सत्ता की बढ़ती भूख और उसे हासिल करने के लिए बेहद घृणित तरीकों के इस्तेमाल में मिलती है। इस सिलसिले में नेहरू ने ही यह परंपरा कायम की कि चाहे संतुलन खो बैठो पर सत्ता से चिपके रहो। 1963 64 के दौरान खुद उनकी यह स्थिति थी। इस शैली के मद्देनजर अब यह साफ दीखता है कि 1958 में प्रधानमंत्री पद छोड़कर पार्टी के लिए काम करने की नेहरू की घोषणा महज एक भुलावा थी। इंदिरा गांधी ने भी इसी परंपरा का पालन किया। छठे, इसकी अभिव्यक्ति सत्तारूढ़ दल के नेताओं के व्यवहार में मिलती है। राजीव गांधी का अपने आलोचकों को 'भौंकते कुत्ते', सांसदों को जोकर', विरोधियों को 'नानी याद करा

देंगे' कहना तथा विपक्षी मुख्यमंत्रियों को बर्खास्त करने की धमकी देना, मजदूर वर्ग को निकम्मा करार देना आदि व्यवहार के पतित मानदंडों की स्पष्ट मिसालें हैं। सातवें इसकी अभिव्यक्ति निजी फायदे की ऐसी राजनीति में हुई है जिसका किसी आस्था या कार्यक्रम से कोई लेना देना नहीं है। विजयी पक्ष में शामिल रहना और 'आया राम गया राम' की राजनीति इसके ठोस उदाहरण हैं।

(ज) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि सरकार जनता के प्रति जवाबदेह हो। इस संबंध में हम पाते हैं कि भारतीय संविधान सरकार को पांच साल बाद ही जनता के प्रति जवाबदेह मानता है। मामूली कार्यकर्ता के रूप में शुरुआत करने वाले कुछ नेताओं के तो दिनों में वारे-न्यारे हो जाते हैं। साइकिल जुटा पाने के काबिल न होने पर भी वे मारुतियों और बंगलों के मालिक बन जाते हैं। लेकिन कोई भी उनकी संपन्नता के स्रोत की तहकीकात नहीं करता। कुछ अपवादों को छोड़कर कोई भी नेता राजनीतिकों की जनता के प्रति जवाबदेही के सिद्धांत में यकीन नहीं रखता। तदनुसार, छह प्रधानमंत्रियों में से किसी ने भी पार्टी कोषों का अनिवार्य रूप से आडिट कराने का कानून नहीं बनवाया। न ही उन्होंने कोई ऐसा कानून बनवाया जिसके तहत सर्वव्यापी भ्रष्टाचार व काले धन पर जोरदार हल्ला बोला जा सके। जवाबदेही लोकतंत्र का वह आधार है जिसके तहत नागरिकों को समय समय पर विभिन्न राजनैतिक दलों के आचरण के बारे में फैसला करने का अधिकार होता है। वे सही फैसला तभी ले सकते हैं जब उन्हें नेताओं खासकर सरकार चलाने वालों की कार्यप्रणाली के बारे में पूरी जानकारी हो। पर वे उस सरकार से पूरी जानकारी कैसे पा सकते हैं जिसमें नेहरू से लेकर राजीव तक ने हर एक राष्ट्रपति को जानकारी पाने के अधिकार से वंचित रखा हो। सरकार ने जनता से सारी महत्वपूर्ण जानकारी छिपाने के लिए हमेशा सरकारी गोपनीयता कानून और विधायिका (संसद और राज्य विधानमंडल) के विशेषाधिकारों की आड़ ली है। ये दोनों ही कानून राजनैतिक प्रक्रिया के लोकतंत्रीकरण में बाधा हैं।

(झ) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि दमनकारी कानूनों से मुक्त माहौल बने जिसमें हमारे प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का भरपूर इस्तेमाल हो सके। इस संबंध में हम पाते हैं कि व्यक्ति के अधिकारों और आजादी पर अंकुश लगाने वाले काले कानूनों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। निवारक नजरबंदी कानून (1950) से लेकर आंतरिक सुरक्षा कानून (1971), विदेशी मुद्रा संरक्षण एवं तस्करी गतिविधि निरोधक कानून (1974) कालाबाजारी निरोधक एवं आवश्यक वस्तु आपूर्ति कानून (1980) राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (1980), गुजरात समाज विरोधी गतिविधि निरोधक कानून (1985) आतंकवाद विरोधी कानून (1986), अस्पताल एवं अन्य संस्थान संबंधी कानून (1987), 59वां संविधान संशोधन कानून (1988) आदि इसकी जीती जागती मिसालें हैं। इसके विपरीत उपनिवेशी शासन सामान्य दंड संहिता के अलावा कभी कभार एक या दो

नजरबंदी कानूनों से ही काम चलाता था। काले कानूनों की प्रक्रिया की शुरुआत नेहरू ने निवारक नजरबंदी कानून बनवाकर की। इंदिरा गांधी ने कई काले कानून बनाकर इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और अब राजीव इसे नया आयाम दे रहे हैं। नजरबंदी कानूनों की ऐसी भरमार क्यों हो गई है? इसलिए कि 1947- उपरांत भारत में अपराध बढ़ गए हैं। साम्प्रदायिक, जातिवादी और धन गुंडा शक्ति के तौर-तरीकों के प्रचलन से राजनैतिक प्रक्रिया का अपराधीकरण हो गया है।[6] समांतर अर्थव्यवस्था (यानी काले धन की अर्थव्यवस्था) के जन्म लेने से आर्थिक प्रक्रिया का अपराधीकरण हुआ है। यह समांतर अर्थव्यवस्था तस्करी धोखाधड़ी, चोरबाजारी, कम या अधिक बीजक बनाने विदेशी मुद्रा नियमन कानून के उल्लंघन, कर चोरी आदि जैसी आपराधिक गतिविधियों पर टिकी हुई है। यहां तक कि आचरण और व्यवहार के पतित एवं भ्रष्ट मानदंडों के फलने फूलने से सांस्कृतिक प्रक्रिया का भी अपराधीकरण हो गया है। अपराधीकरण की इस समूची प्रक्रिया की खास जिम्मेदारी सत्तारूढ़ दल की है जबकि बाकी दल भी अमूमन इसमें भागीदार हैं।

(ज) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंतिम मगर ज्यादा महत्वपूर्ण पूर्व शर्त यह कि जनता में लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष विचारों का प्रचार हो। इस संबंध में हम पाते हैं कि विभिन्न राजनैतिक दलों मुख्यतया शासक दल ने अपने प्रचार और गतिविधि के जरिए खासकर चुनाव प्रक्रिया में (जो व्यापक पैमाने पर विचार फैलाने का मुख्य कार्यक्षेत्र है) भारतीय जनता में साम्प्रदायिक जातिवादी और स्वार्थपरक चेतना बढ़ाई है।

8 विधायिका

मे लाए गए दो तिहाई विधेयक जरूरी कोरम के बिना ही पारित हुए। और मुख्य वजह यह है कि ससद मे कोई वैकल्पिक विपक्षी दल नही। तभी कायपालिका पर ससद का कमजोर अकुश है।

(ख) फिर भी, अगर ससद म खुली और निस्सकोच बहस पर अनुचित प्रतिबध न हो तो उसकी भूमिका को थोडा अधिक कारगर बनाया जा सकता है। ससदीय रिकाड बताता है कि नेहरू की पहल पर ही लोकसभा अध्यक्ष और राज्यसभा के सभापति को असामान्य अधिकारो स लैस किया गया। लोकसभा की कायविधि के नियम 380 के तहत अध्यक्ष अगर किसी बात को अससदीय या अशोभनीय समझ तो उसे उन अशो को सदन की कायवाही से खारिज करने का अधिकार है। दिलचस्प बात है कि 1947 से पहले केंद्रीय विधानसभा म एसा कोई नियम नही था। तब काग्रेसी और दूसरे भारतीय सदस्य ब्रिटिश शासन के खिलाफ कुछ भी कह सकते थे। नियम 380 अलोकतान्त्रिक है क्योकि यह आम लोगो को ससद म अपने नुमायदा के कामकाज के बारे मे जानने के अधिकार से वचित रखता है। इसके अलावा ससद के दोनो सभापतिया के पास इतने अधिकार है कि वे अपने अपने सदन मे किसी भी मुद्दे पर बहस रोक सकते है। 1987 म जब ससद के बाहर आम लोगो म राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री विवाद पर चर्चा छिडी हुई थी तो दोनो सभापतिया न अपने-अपन सदन म इस मुद्दे पर इसलिए बहस नही होन दी कि राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग के प्रस्ताव को छोडकर उसकी भूमिका के बारे मे कोई बहस नही हो सकती।

(ग) ससदीय परपराओ के अनुसार सभापतियो को दलगत राजनीति से ऊपर होना चाहिए। मगर भारत म लोकसभा या किसी राज्य विधानसभा का अध्यक्ष अथवा राज्यसभा या किसी राज्य विधान परिषद का सभापति दलीय उम्मीदवारो के रूप म चुनाव लडता है और सक्रियता से अपने दल का काम करता रहता है, तकनीकी तौर पर भले ही उसने किसी दल की सदस्यता ग्रहण न की हो। वीटो अधिकारो से लैस और दलो के प्रति निष्ठा रखने वाले ऐस लोगो क सभापतित्व मे भारतीय ससद मे खुली और निस्सकोच बहस कस हो सकती है ?

(घ) ससद की भूमिका (सशक्त विपक्ष के न होने पर) थोडी अधिक कारगर बनाने का दूसरा तरीका यह है कि मौजूदा कायविधि के अनुसार काम किया जाए जिसके तहत सभी महत्वपूण ससदीय कार्यों को सयुक्त समितियों और प्रवर समितियो को सौंपा जाता है। लेकिन कायपालिका इसे फालतू की कसरत मानती है। इदिरा गाधी इस कायविधि की अधिकाधिक अनदखी करती गई और राजीव ने करीब करीब इस खत्म ही कर दिया है। अब शायद ही कोई काम इन समितियो के हवाले किया जाता है। लोक लेखा समिति, सावजनिक उपक्रम समिति, आकलन समिति आदि सरीखी सवधानिक ससदीय समितियो को भी कायपालिका से सहयोग नही मिलता और उनकी सिफारिशो को खासी अहमियत नही दी जाती।

(ड) अध्यादेशो[7], प्रशासकीय आदेशा प्रेस वक्तव्यो आदि जैस विभिन्न

उपायो कि जरिए विधायिका की अनदेखी करना भारतीय कायपालिका का सामान्य कायदा बन गया है। कई बार तो ससद को गलत जानकारी तक दे दी जाती है (मसलन अप्रल 1987 मे राजीव का ससद म यह बयान कि वे राष्ट्रपति को हमेशा जानकारी देते आए हैं, बाद म झूठा निकला)। मन्त्रिमडल या प्रधानमन्त्री की ओर से भी महत्वपूण फैसले अमूमन ससद से बाहर लिए जाते है। फिर उन्ह सवैधानिक जामा पहनाने के लिए ससद म रखा जाता है। इन सबस ससद की प्रतिष्ठा घटी है। लगता है जसे वह बहस मुबाहिसे की ही सस्था बन गई है।

9 न्यायपालिका

(क) सवैधानिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए एक और महत्वपूण बात स्वतत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका का होना भी है। एसा इसलिए है कि ससदीय प्रणाली मे न्यायपालिका को सविधान की रक्षक माना जाता है। राज्यतत्र के दूसर दो अग जब अपनी सीमाए लाघ जात है तो पीडित पक्ष न्याय के लिए हमेशा अदालत का रुख करता है। न्यायपालिका के पास न तो खजाने की ताक्त है, न सैन्य बल की। इसका एकमात्र गुण बिना किसी डर या पक्षपात के स्वतत्रता और निष्पक्षता से न्याय का पक्ष लेना है।

(ख) कुल मिलाकर भारतीय न्यायपालिका (जिसके शीष पर सुप्रीम कोट है और सबसे नीचे मुसिफ की अदालत) की भूमिका नकारात्मक क मुकाबले ज्यादा सकारात्मक है। सामाजिक न्याय, मौलिक अधिकारो, नागरिक स्वतत्रताओ तथा महिलाओ, जनहित, सरकारी ज्यादतियो और अफसरशाही की अति के मुद्दो पर कमजोर वग के अधिकारो जस अनेक महत्वपूण मामलो मे इसन नई दिशाए खोली है। पर यह अभी भी कई गभीर रोगो स ग्रस्त है। मसलन कायपालिका और न्याय-पालिका के बीच टकराव म कायपालिका उस पर हावी है, न्यायपालिका म भ्रष्टाचार की समस्या मुह बाए खडी है, न्याय की प्रक्रिया लबी और दुष्कर चली आ रही है, पुराने मुकदमो का भारी बोझ बना हुआ है, न्याय पाने के लिए ज्यादा खच करना पडता है, आदि आदि।

(ग) न्यायपालिका पर कायपालिका के हावी होने की वजह भारत के शासक दल की तानाशाही प्रकृति है जो एकदलीय शासन जारी रखने के लिए न्यायपालिका पर हमला और दबाव बनाए रखे हुए है। कायपालिका इस दबाव का इस्तेमाल न्याय-धीशो की नियुक्ति तबादले और पदोन्नति (कई बार प्रतिस्थापन) के अपने सवैधानिक अधिकार के जरिए करती है। नेहरू के शासनकाल मे कायपालिका और न्यायपालिका के बीच टकराव की नौबत नही आई। वजह यह कि इधर उधर की मामूली बातो को छोडकर न्यायपालिका कायपालिका के लिए गभीर चुनौती नही बनी थी। ऐसी पहली गभीर चुनौती 1967 मे मिली जब गोलकनाथ मामले मे सुप्रीम कोट ने फैसला सुनाया कि 'आज के बाद सविधान के भाग 3 की धाराओ मे सशोधन करने

का अधिकार संसद को नहीं होगा ताकि वह उसम दर्ज मौलिक अधिकारों को वापस न ले पाए या उनमे कटौती न कर पाए।" बैंक राष्ट्रीयकरण और प्रिवी पर्स के मामला मे यह चुनौती ज्यादा मजबूत हुई। इंदिरा गांधी ने न्यायपालिका के धाव को रोकने के लिए ससद का इस्तमाल किया। उनके एक मंत्री ने तो संविधान के प्रति नहीं बल्कि शासक दल के दर्शन के प्रति निष्ठावान न्यायपालिका का सिद्धात तक पेश कर दिया। खुद प्रधानमंत्री ने 1950 से चले आ रहे उस नियम को तोड़ा जिसके तहत सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति वरीयता के आधार पर की जाती रही है। उन्होंने 1973 में तीन न्यायाधीशों की वरीयता लाघकर ए० एन० राय को मुख्य न्यायाधीश मुकरर किया। विरोध म तीनों न्यायाधीशों ने इस्तीफा दे दिया। इंदिरा गांधी के लिए गंभीर न्यायिक चुनौती 1975 म पैदा हुई जब इलाहाबाद हाई-कोर्ट के एक न्यायाधीश ने एक चुनाव याचिका पर फैसला सुनाते हुए उनके संसदीय चुनाव को भ्रष्ट आचरण के आधार पर अवैध घोषित कर दिया। जवाब म उन्होंने देश भर मे इमरजेंसी लगा दी। तब से हाईकोर्ट के न्यायाधीशों के तबादले नित्यक्रम बन गए हैं। इससे पहले केंद्र सरकार सुप्रीम कोर्ट और हाईकोर्टों के न्यायाधीशों की नियुक्ति और तबादले के मामलों म भारत के मुख्य न्यायाधीश की सिफारिशें वस्तुत मान लिया करती थी। पर अब ये सिफारिशे औपचारिकता मात्र रह गई। यही नहीं, इंदिरा गांधी ने न्यायपालिका को अपने राजनतिक स्वार्थों की खातिर भी इस्तेमाल किया। करुणानिधि जब इंदिरा गांधी के विरोध मे थे तो उन्होंने द्रमुक नेता के खिलाफ जाच आयोग मुकरर किया। पर जब द्रमुक ने कांग्रेस के साथ संयुक्त मोर्चा बना लिया तो यह आयोग हटा लिया गया। फिर, जब अन्नाद्रमुक कांग्रेस के विरोध म आई तो प्रधानमंत्री ने उसके नेता एम० जी० रामचद्रन के खिलाफ जाच आयोग बिठाया लेकिन बाद मे वह आयोग भी रद्द कर दिया गया। राजीव के शासन म न्यायपालिका पर कार्यपालिका का दबाव और बढ़ गया है। इसके बहुत से उदाहरण है—कलकत्ता हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश डी० एस० तेवतिया का हाल ही मे अपने अनुचित तबादले पर इस्तीफा, दिल्ली हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश पद पर न्याया-धीश चावला की पदोन्नति वकीलों द्वारा उनके पक्ष म हड़ताल करने पर ही संभव हो पाई, केंद्र सरकार द्वारा हाईकोर्ट के कुछ न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले म गुजरात के मुख्य न्यायाधीश, राज्य सरकार और भारत के मुख्य न्यायाधीश की सर्वसम्मत सिफारिश को रद्द किए जाने पर 1986 मे वकीलों की राज्यव्यापी हड़ताल आदि आदि। राजनतिक हितों के लिए इस्तेमाल हो रहे न्यायाधीशों (जो छोटी मोटी रियायतों के जाल म फस जाते हैं) की संख्या मे भी वृद्धि हुई है। 1987 म ठक्कर नटराजन आयोग (जो सुप्रीम कोर्ट के इन दो न्यायाधीशों से गठित था) के इस कथन से, कि प्रधानमंत्री को अस्थिर करना देश को अस्थिर करना है, भी न्याय-पालिका की ईमानदारी के प्रति लोगों के विश्वास को गंभीर ठेस पहुची है। कुदाल आयोग, रंगनाथ मिश्र आयोग आदि न्यायाधीशों के राजनैतिक उपयोग के कुछ और

चुनिंदा उदाहरण हैं। जब न्यायाधीश कार्यपालिका के औजार बन जाते हैं तो जनता का विश्वास न्यायपालिका में कम होने ही लगता है।

(घ) न्यायपालिका को खा रहे दूसरे रोगों में भ्रष्टाचार की समस्या अभी भी हल नहीं हुई है। संविधान में भ्रष्ट न्यायिक अधिकारी पर महाभियोग चलाने का प्रावधान है। पर इस धारा का कभी प्रयोग नहीं हुआ। इसकी प्रक्रिया इतनी जटिल है कि आम आदमी के वश की नहीं। जहां तक न्यायिक प्रक्रिया में देरी का ताल्लुक है, रोज ऐसे मामले देखने में आते हैं जहां वादी की पूरी जिंदगी ही मुकदमों की पेशी में गुजर जाती है। मामला न निपटने पर वह इसे आगे विरासत में दे जाता है। जाहिर है न्याय में देरी न्याय से वंचित रखने के समान है। अदालतों में लटके मामलों की संख्या—हाईकोर्टों में 15 लाख और सुप्रीम कोर्ट में 1,86,000—भी चौंकाने वाली है।[8] मौजूदा रफ्तार से उन्हें निपटाने में 30 साल लग सकते हैं। न्याय पाने के लिए ज्यादा खर्च भी आम आदमी की बर्दाश्त से बाहर है। मुकदमेबाजी में फंसने का मतलब है कर्ज में धंसना। अदालतों की पूरी फीस अग्रिम देनी पड़ती है पर यह भरोसा नहीं कि मामला जिंदगी में ही निबट पाएगा या नहीं। जाहिर है भारतीय न्यायिक व्यवस्था आम आदमी की पहुंच से बाहर है। इतिहास में न्यायिक व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह रहा है कि न्याय सुगमता से उपलब्ध हुआ करता था। पुराने जमाने में बादशाह अपने महल के बाहर एक घंटा लगा दिया करते थे और न्याय चाहने वाला कोई भी शख्स उसे बजा सकता था।

(ङ) ये सभी रोग कार्यपालिका की देन हैं और वह ही कानूनी कार्यप्रणाली में तब्दीलियां करके और न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर इन्हें खत्म कर सकती है। न्यायिक विश्वसनीयता तभी बनी रह सकती है जब न्यायपालिका संविधान और कानून का पालन करने के अलावा भारतीय जनता के प्रति गंभीर रूप से जवाबदेह हो तथा अदालत की अवमानना (जो न्यायपालिका के लोकतंत्रीकरण में बाधा है) के अपने विशेषाधिकार का त्याग करे।

10 प्रेस

(क) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त आजाद और जिम्मेदार प्रेस का होना है। ऐसा इसलिए है कि आधुनिक राज्यतंत्र में प्रेस जनमत को ढालने का एक शक्तिशाली माध्यम है। यही वजह है कि कुछ राजनीति शास्त्रियों ने इसे चौथे स्तंभ का नाम दिया है। कुल मिलाकर भारतीय प्रेस ने 1947-उपरांत दौर में सकारात्मक भूमिका निभाई है और मौजूदा वक्त में भी उसकी यही स्थिति है।

(ख) भारतीय संविधान में प्रेस की आजादी का कहीं जिक्र नहीं मिलता। पर सुप्रीम कोर्ट का मत है कि संविधान का अनुच्छेद 19 (1 क) अभिव्यक्ति की आजादी की गारंटी देता है जिसमें प्रेस की आजादी भी शामिल है।

(ग) भारतीय प्रेस खासकर बड़े व्यापारिक घरानो की मिलकियत वाले प्रेस ने अमूमन 1947-उपरात भारत म बनी सभी सरकारो की मूल नीतियो का समथन किया है। कुछ ही मौको पर जब इसके अपने हितो को चोट पहुँची (मसलन 1951 म अनुच्छेद 19 मे सशोधन जिससे सरकार को मानहानि पर कानून बनाने का अधिकार मिला तथा 1988 मे मानहानि विधेयक के वक्त) अथवा जब सरकार को भारी जन विरोध का सामना रहा (मसलन 1975 की आतरिक इमरजेंसी तथा फेयरफैक्स, बोफोर्स आदि सरीखे घोटालो के वक्त) इसने सरकारी नीतियो की आलो चना की है। कभी कभार कोई निष्पक्ष या शायद भावुक सवाददाता ने इस पर कुछ कटाक्ष अथवा कोई दुखी पत्रकार अपने मन की भडास जरूर निकालता रहता है। पर भारतीय प्रेस की आम दिशा हमेशा सरकारी लाइन का समथन करना रही है। इस समय 'इडियन एक्सप्रेस' और इसके सहयोगी पत्र पत्रिकाओ मौजूदा सरकार के खिलाफ बडा जेहाद छेड रखा है लेकिन वे भी बहुत सी मूल समस्याओ (जसे कि पजाब, श्रीलका पाकिस्तान, आर्थिक नीति, राष्ट्रीय नीति, सास्कृतिक नीति आदि) पर सरकार के साथ खडे है। निस्सदेह भारतीय प्रेस ने खासकर खोजी पत्रकारिता के जरिए अपनी शैली और रचना मे बहुत सुधार किए हैं पर इसने अक्सर सनसनीखज और व्यक्तिवादी राजनीति को प्रमुखता देकर मुद्दा पर आधारित राजनीति को गौण हैसियत दी है। नतीजतन, जनता मे ऐसी व्यक्तिवादी चेतना पैदा हुई है जिसमे राज नैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जानकारी का अभाव है।

(घ) बहरहाल, प्रेस द्वारा सरकारी नीतियो को आम समथन देन के बावजूद भारत म हावी एकदलीय प्रशासन ने हमेशा उसे दब्बू बनाने का प्रयास किया है। नेहरू के शासनकाल म अनुच्छेद 19 म सशोधन करके सरकार ने मानहानि के बारे म कानून बनाने का अधिकार हासिल कर लिया। उत्तेजना म आकर प्रेस ने इस सशोधन का जोरदार विरोध किया। इदिरा गाधी ने पहले अखबारो को विभिन्न श्रेणियो के लिए मुकरर कीमत पष्ठ परिगणना के जरिए और फिर प्रसार सख्या के आधार पर कागज का कोटा बाटने की चाल के जरिए बाधने की कोशिश की। इमर जेंसी के दौरान पहले मुखर अखबारो का मुह बद करने के लिए सेंसरशिप का प्रयोग हुआ और बाद मे विभिन्न समाचार एजेंसियो का विलय करके समाचार' नाम की सरकारी एजेंसी वजूद मे लाई गई। जनता सरकार ने रेडियो और टीवी की स्वायत्तता के लिए वर्गीज समिति की सिफारिशो की अनदेखी की। फिर, इदिरा गाधी राज मे अखबारो पर पाबदिया लगाने वाले बिहार प्रेस विधेयक को सवत्र विराध के कारण वापस लेना पडा। राजीव सरकार ने पहल कुछ जिम्मेदार पत्रकारो (इ० पो० वीक्ली और कौमी आवाज के सपादको तथा पीयूसीएल व पीयूडीआर के नेताओ आदि) को आपराधिक मामलो म फसाकर और फिर मानहानि विधेयक लाकर प्रेस को आतकित करने की कोशिश की। दोनो मौको पर उसे अपने कदम तुरत पीछे खीचने पडे।

(ङ) भारतीय प्रेस अब परिपक्व हो गया है। उसने जिदगी मे पर्याप्त

सकारात्मक और नकारात्मक अनुभव हासिल किए हैं। इन अनुभवों के निचोड़ से उसे जनता के हित की पूर्ति के लिए एक उचित सैद्धांतिक व व्यावहारिक रुख अपनाना चाहिए। ऐसा करते समय उसे सरकारी नियंत्रण से मुक्त रहने और लोगों के प्रति जवाबदेह होने के जुड़वां सिद्धांत का पालन करना चाहिए।

11 राजनैतिक दल

(क) संवैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक और पूर्व शर्त यह है कि एक सुगठित पार्टी तंत्र मौजूद हो। ऐसा इसलिए है कि संसदीय राज्यतंत्र इस तरह के पार्टी तंत्र के बिना चल नहीं सकता। बहरहाल, भारत के पार्टी तंत्र की अपनी निम्नलिखित खासियतें हैं।

पहली बात यह है कि भारत में न तो रूस की तरह का एकदलीय तंत्र है, न ब्रिटेन जैसा दो दलीय तंत्र और न ही इटली और फ्रांस सरीखा बहुदलीय तंत्र। यहां बहुदलीय तंत्र वाली व्यवस्था पर हावी एक पार्टी का तंत्र मौजूद है।

दूसरे भारत के अधिकांश दलों में वैचारिक आधार का अभाव है। वैचारिक असूलों के बजाय उन पर व्यक्ति हावी हैं। वामपंथी (यानी भाकपा, माकपा और कुछ अन्य गुटों) तथा कट्टरपंथी दलों (यानी शिवसेना भाजपा, अकाली दल, मुस्लिम लीग आदि) को छोड़कर बाकी सभी दल वैचारिक रूप से तटस्थ संगठन हैं। वे व्यक्तियों से अधिक सरोकार रखते हैं। उनकी मुख्य रुचि सत्ता के फल बटोरने में है और वे किसी खास कार्यक्रम या नीति के प्रति निष्ठा नहीं रखते। इस तरह राजनीति पर अनैतिकता हावी हो गई है। कांग्रेस नेतृत्व ने ही शासक दल के भीतर और जनता के बीच सिद्धांतोन्मुख के बजाय व्यक्ति उन्मुख रुख की शुरुआत करके इसे बढ़ावा दिया और इस तरह मूल्यों पर आधारित राजनीति की जड़ें खोदीं।

तीसरे, एक ही पार्टी के प्रभुत्व वाला तंत्र भारतीय राज्यतंत्र का स्थायी पहलू नहीं है। प्रभुत्वकारी दल यानी कांग्रेस दल किसी भी आम चुनाव में कुल वोटों का बहुमत (यानी 50 फीसदी से कुछ ऊपर) कभी हासिल नहीं कर पाया। 1977 में भारतीय जनता ने तब की जनता पार्टी का साथ देकर इसे सत्ता से बाहर कर दिया। 1967 के चुनाव में कांग्रेस मामूली बहुमत पाकर संसदीय चुनाव तो जीत गई थी पर उसे नौ राज्यों में मुंह की खानी पड़ी। इस समय 10 राज्यों में गैर कांग्रेसी दलों की सरकारें हैं।

चौथे, भारत के राजनैतिक दलों को तीन मोटी श्रेणियों में बांटा जा सकता है—राष्ट्रीय दल (यानी कांग्रेस इ, भाकपा, माकपा जनता, लोकदल आदि), क्षेत्रीय दल (यानी नेशनल कांफ्रेंस, अन्नाद्रमुक, तलुगु देशम आदि) और सांप्रदायिक दल (यानी शिवसेना, भाजपा, मुस्लिम लीग अकाली दल आदि)।

पांचवें, अत्यधिक गुटबंदी से राजनैतिक दलों की पार्ते बार बार टि-हुई हैं। इस तरह अब कांग्रेस के दो, कम्युनिस्ट पार्टी के तीन या चार, जनत

के दो, लोकदल के दो, अकाली दल के तीन, नेशनल कांफ्रेंस क दो, द्रमुक के दो गुट वजूद मे है।

(ख) उक्त खामियतें बताती हैं कि भारत म अभी स्वस्थ पार्टी तत्र नही उभर पाया है। 1947 के बाद यहा शासक दल का राष्ट्रीय विकल्प न उभर पाने का मुख्य कारण यह है कि कोई भी परपरागत विपक्षी दल लोगो क सामने वकल्पिक कायक्रम और नीतिया रखने मे समथ नही हुआ है। इसके बजाय उन्होन एक तरफ काग्रेस को प्रतिक्रियावादी ताकत बताकर और दूसरी तरफ अधिकाश मूल सवालो (जैसे एटमी हथियारो की नीति, रक्षा, पाकिस्तान विरोधी, चीन विरोधी, रूस समथक विदेश नीति, योजना, सावजनिक क्षेत्र आदि) के बार म शासक दल की नीतिया का समथन करके प्राय लोगो को उलझन म डाले रखा है।

12 भारत की विविधता मे एकता का आधार

पाकिस्तान क मुकाबले भारत का राज्यतत्र 40 साल से अधिक तक अपना ससदीय स्वरूप बनाए रखन मे कामयाब रहा है। जो लोग मानत हैं कि कोइ निरकुश शासन और सनिक तानाशाही ही किसी बहुभाषायी और विभिन्न सस्कृतियो वाले देश को एकजुट रख सकती है उनके लिए भारत मे ससदीय स्वरूप वाली सरकार का कायम रहना चमत्कार स कम नही। उनके लिए यह भी भारी आश्चय की बात है कि इस देश म—जहा सविधान से मान्यता प्राप्त 16 भाषाए है, करीब 4000 भाषाए और बोलिया बोली जाती है, 70 फीसदी लाग अभी अनपढ हैं—आठ बार नियमित अवधि पर ससद और राज्य विधानसभाओ क चुनाव हो चुके है। यह आश्चय उस परपरागत धारणा पर आधारित है जो 1945 स पहले के दौर म माकूल थी। तब सामाजिक सोच मुख्यतया उपनिवेशी दष्टिकोण और 'प्रभुत्वकारी अधीनस्थ सबधो के आधार पर बनती थी तथा विविधता म एकता, खासकर अल्पविकसित देशो मे किसी निरकुश राज्यतन्त्र के जरिए ही बनाए रखे जा सकती थी। भारत का अनुभव इस तथ्य का (जो कई यूरोपीय देशो मे पहले ही स्थापित हो चुका है) सिद्ध करता है कि 1945 के बाद की दुनिया म साम्प्रदायिक और उग्रवादी खतरो व दबावो के आगे लोकतान्त्रिक राज्यतन्त्र निरकुश राज्यतत्र से ज्यादा लाचार है। अगर भारतीय राज्यतन्त्र अति केंद्रीयकरण से मुक्त होता और इसकी विभिन्न काग्रेसी सरकारो पर तानाशाही का नशा सवार न होता तो 1947 उपरात साम्प्रदायिक और उग्रवादी खतरे पैदा ही न होते अथवा इस हद तक भयानक रूप अख्तियार न कर पाते। निस्सदेह भारत का ससदीय लोकतन्त्र उपमहाद्वीप मे बडी उपलब्धि है पर पिछले 40 साल से श्रीलका जैसे छोटे लोकतत्र भी ससदीय अभियान मे जमे रहे है।

13 भारतीय जनता द्वारा चुकाई गई भारी कीमत

उपरोक्त लेखे-जोखे से पता चलता है कि भारतीय सविधान ने प्रधानमत्री के

हाथो मे अति केंद्रित सत्ता सौंपकर भारतीय राज्यतन्त्र को अति केंद्रीयकृत राज्यतन्त्र बना दिया है। अति केंद्रीयकरण का अभिशाप यह है कि इससे सोच व अमल के तानाशाही तौर-तरीके जन्म लेते है। असतोष को लोकतान्त्रिक तरीको से शात करने के बजाय तानाशाही शैली हमेशा उससे सहार या दमन के जरिए निबटती है। इससे स्वाभाविकतया सरकार और जनता के बीच टकराव की स्थिति बन जाती है। देश के सभी भागो मे लोगो के बडे और छोटे सघष, आदोलन, हडताले, प्रदशन, विरोध सभाए आदि इसी तथ्य की पुष्टि करती है। इन सघर्षो मे सरकार की गोलियो, लाठियो और आसू गैस से बहुत सारे लोग मरे और घायल हुए है। 1947 के बाद असम, पजाब और गुजरात मे सैनिक कारवाइया हुई हैं। इन कारवाइयो स पहले भी भारत मे विभिन्न नागरिक विवादो मे 369 बार सेना ने हस्तक्षेप किया।[9] पिछले 40 साल म सेना और पुलिस बलो के हाथो कितने लोगो की जानें गई हैं, इसके बारे मे कोई सरकारी आकडे उपलब्ध नही है। 1952 के दौरान ससद मे दिए गए पुराने आकडो के अनुसार 15 अगस्त 1947 और 15 अगस्त 1950 के बीच 1,982 मौको पर सेना और पुलिस की गोली से करीब 3 784 लोग मारे गए और लगभग 10 000 घायल हुए। इस आधार से कम आकने पर भी हम अगर एक साल मे मतको की 1,000 और घायलो की 3 000 सख्या मानें तो पिछले 40 साल मे पुलिस और सेना की गोली से मरे लोगो की सख्या 40,000 और घायला की 1,20,000 बैठती है। इसके अलावा तेलगाना नक्सलबाडी, नगालड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, असम के सशस्त्र सघर्षो तथा जूनागढ, हैदराबाद, गोआ और पजाब की सनिक कार वाइयो मे भी भारी तादाद मे लोग मरे या घायल हुए थे। पर इनके बारे मे भी कोई विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नही हैं। लेकिन अकेले पजाब मे ही, बाबा आम्टे के अनुसार, सभी पक्षा (यानी आम सिखो और हिंदुओ, खालिस्तानियो तथा सरकारी बला) के हताहतो की सख्या 1978 और 1987 के दौरान 25 000 से अधिक पहुच गई थी। ऊपर बताए गए हरेक सशस्त्र सघष म अगर पजाब के मुकाबले एक चौथाई लोग भी मारे गए हो तो मोटे तौर पर इस श्रेणी मे कुल मरे लोगा की सख्या 50,000 और घायलो की 1,00 000 बैठती है। इसके अलावा पिछले 40 साल के दौरान हुए 12 000 साप्रदायिक दगो मे 20,000 से कम लोग नही मरे[10] और इससे दुगुने घायल हुए हैं। कुल मिलाकर अति केंद्रीयकृत भारतीय राज्यतन्त्र और तानाशाह काग्रेस सरकार के एवज भारतीय जनता को लगभग 1,10,000 मौता और करीब 2 60,000 घायलो से कीमत चुकानी पडी है। जन हानि के मायने म यह कीमत सैनिक शासन वाले पाकिस्तान और राजशाही नेपाल से कही ज्यादा है। हमने अति केंद्रीयकृत राज्यतन्त्र और तानाशाही शासन के लिए सचमुच भारी कीमत चुकाई है।

सदभ

1 कुलदीप नायर, 'इंडिया आफ्टर नेहरू', वीपी हाउस, दिल्ली, 1975, पृ० 138
2 माइकल ब्रेखर, नेहरू—ए पालिटिकल बायोग्राफी', ओयूपी लदन, 1959, पृ० 458
3 इंडियन एक्सप्रेस, 24 3 88, पृ० 2
4 से 5 'इंडिया आफ्टर नेहरू', पृ० 6 और 8
6 बताया जाता है (हिंदुस्तान टाइम्स, 13 10 88, प० 10) कि 1984 मे उत्तर प्रदेश के 50 000 ग्राम सभा चुनावा म 50 फीसदी से ज्यादा उम्मीदवारो का आपराधिक इतिहास रहा है। 1984 म सीवीआई ने उत्तर प्रदेश के एक विधायक को 20 किलो हेरोइन और अन्य प्रतिबधित माल सहित रग हाथा गिरफ्तार किया। गुजरात मे न्यायाधीश मियाभाई आयोग न इस बात का पर्याप्त सबूत पाया कि नाजायज शराब के व्यापारी राजनैतिक जीवन मे खासकर चुनाव के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जे० एफ० रिबरो जब गुजरात मे थे तो उन्होने 1985 के दगो पर टिप्पणी करते हुए कहा था गुजरात नताओ और नाजायज शराब के व्यापारिया के बीच साठ गाठ का उत्कृष्ट उदाहरण है। बिहार के कुछ माफिया नेताजा को मध्य प्रदेश की यात्रा म सरकार न सुरक्षा गाड उपलब्ध कराए। आजीवन कैदियो को पेरोल पर रिहा करना आम राजनतिक चलन हो गया है और वे इस मौके का फायदा उठाकर अपन विरोधिया को खत्म करते हैं। दिल्ली म नववर 1984 के सिख विरोधी दगो पर मिश्र आयोग की रिपोट सच्चाई का पता लगाने मे भले ही नाकाम रही पर उसे भी ये टिप्पणिया करने पर बाध्य होना पडा कि पुलिस दवाव के तहत ड्यूटी पर नही रही, सरकार का एहसास होना चाहिए कि पुलिस जनता की सेवा क लिए है, सत्ताधारी दल के राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए नही, तथाकथित जनहित के आधार पर मुक्दमे वापस लेना अब अपवाद नही रहा आम दस्तूर हो गया है। यदि इडियन एअरलाइस के एक विमान के अपहरण की घटना यह कहकर माफ कर दी जाती है कि अपहृताओ का इरादा अपनी पार्टी नेता के प्रति निष्ठा व्यक्त करना था और 1980 मे उनक खिलाफ मुकदमा वापस ले लिया जाता है, यहा तक कि एक अभियुक्त को तो काग्रेस विधानसभा के लिए टिकट भी द देती है यही चलन सभी सत्ताधारी दलो न भी अपना लिया है जैसे 1985 मे असम मे अगप ने 1977 मे केंद्र मे जनता सरकार ने और 1980 म काग्रेस सरकार ने। दुर्भाग्य से सुप्रीम कोट ने कायपालिका द्वारा किसी भी फौजदारी मुकदमे को वापस लेने के बेलगाम अधिकार को कबूल करके राजनीति और अपराध के बीच गठजोड सुगम बनाया है। मुठभेड म मौतें राजनीति के सरक्षण में पुलिस की गैर कानूनियत का ही एक उदाहरण है। कानून स्थापित करने

वाली सस्था म अत्यधिक भ्रष्टाचार है।

7 'फ्रेश पॅसपेक्टिव्ज आन इडिया ऐंड पाकिस्तान', बुक ट्रेडस लाहौर, प० 8 के मुताबिक 1950 और 1984 के बीच केंद्र और विभिन्न राज्य सरकारो ने राष्ट्रपति के नाम पर कुल 348 अध्यादेश जारी किए। इनमे से कुछ अध्यादेश तो ऐसे वक्त मे भी जारी किए गए जब सबधित विधायिका के किसी एक सदन का सत्र चल रहा था।

8 ट्रिब्यून, 17 11 84, प० 4 और टाइम्स ऑफ इडिया, 10 12 88, पृ० 4

9 मासिक सेमिनार, दिल्ली, अप्रैल 1985

10 भारत मे 1960-70 के दौरान साप्रदायिक वारदातो की तादाद 700 से बढकर 3 000 हो गई। सरकारी आकडो के अनुसार इस दौरान 3,508 लोग मारे गए जबकि 1950 से 1963 के बीच इस तरह से मरने वालो की सख्या 389 थी (डिस्टेंट नेवरज', कुलदीप नायर, पृ० 178)

1977 से 1983 तक के सात साल के दौरान भारत मे हुए साप्रदायिक दगो मे करीब 2,359 लोग मारे गए। यानी हर साल औसतन 300 लोगो की जानें गई। इसके अलावा 1984 जैसे असामान्य वप म करीब 4,000 लोग सिख विरोधी दगा मे मारे गए और 1983 मे 3,000 से अधिक जानें असम मे नेली की साप्रदायिक हिंसा ने लील ली।

अध्याय चार
भारतीय अर्थव्यवस्था

इसका संबंध 1947 उपरांत भारतीय अर्थव्यवस्था के कामकाज और इसके प्रबंध की प्रक्रिया से है।

1 संरचना

संरचनात्मक रूप से, 1947 उपरांत भारतीय अर्थव्यवस्था मोटे तौर पर दो भागों—आधुनिक और पारंपरिक से गठित है। आधुनिक भाग में आधुनिक टेक्नोलॉजी और पारंपरिक भाग में पारंपरिक टेक्नोलॉजी की विशेषता है। आधुनिक भाग आगे फिर दो उप भागों—संगठित और छोटे व मध्यम आकार वाले खंडों में बंटा है। संगठित भाग सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र से गठित है। सार्वजनिक संगठित क्षेत्र की भूमिका प्रमुख है। निजी संगठित क्षेत्र भी राजकीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा नियंत्रित है क्योंकि बहुत से बड़े कारखानों में इन्हीं संस्थाओं के ज्यादातर शेयर हैं। इस प्रकार समूची भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी संगठित क्षेत्र सार्वजनिक संगठित क्षेत्र का कनिष्ठ भागीदार ही है। छोटे और मध्यम आकार के क्षेत्र पर मूलत निजी क्षेत्र का ही नियंत्रण है। पारंपरिक भाग में कृषि और इससे संबंधित उद्योगों का प्रमुख स्थान होने के कारण उस पर भी निजी क्षेत्र का कब्जा है। यही निजी क्षेत्र भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पादन में करीब 80 फीसदी योगदान देता है।

2 समस्याएँ

समस्याओं के लिहाज से भारतीय अर्थव्यवस्था एक अर्ध विकसित अर्थव्यवस्था है जिसकी सात विशेषताएँ हैं। ये हैं—प्रति व्यक्ति कम आय या व्यापक गरीबी, भारी पैमाने पर बेरोजगारी और अर्ध-बेरोजगारी, कृषि की प्रमुखता, प्राथमिक माल के निर्यात की प्रधानता, अपर्याप्त पूंजी, न्यून उत्पादकता निरक्षरता होने के साथ ही निपुणता का अभाव और बढ़ती जनसंख्या। इनमें से अपर्याप्त पूंजी और न्यून उत्पादकता की दो विशेषताएँ ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। इसलिए भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का मतलब है इन सात विशेषताओं को आम तौर पर और अल्प विकास की दो विशेषताओं को खास तौर पर दूर करना।

3 आर्थिक विकास के मूल सिद्धांत के रूप में राज्य नियोजन

प्रशासकीय रूप से, भारतीय राज्य ने नियोजन (यानी पूर्व निर्धारित लक्ष्यों और साधनों को हासिल करने के लिए सचेत रूप से किया जाने वाला काम) को

आर्थिक विकास के अपने मूल सिद्धांत के रूप म अपनाया है। भारतीय सविधान मे नियोजन का कोई साविधिक महत्व नही है। इसम सामाजिक और आर्थिक नियोजन की व्यवस्था समवर्ती सूची मे की गई है। इसके अनुसार देश मे सामाजिक और आर्थिक लोकतत्र का विकास चौथे भाग म व्यक्त राज्य नीति के निदेशक सिद्धातो को लागू करके हासिल किया जाए। सविधान मे किसी नियोजन सस्था को बनाए जाने की बाबत भी कुछ नही कहा गया है। इसलिए योजना आयोग की स्थापना 1950 मे सरकारी प्रस्ताव द्वारा एक सविधानेतर सस्था के रूप मे की गई। योजना आयोग ससद के प्रति जवाबदेह नही है। 1952 म कुछ केंद्रीय मत्रियो, योजना आयोग के सदस्यो और मुख्यमत्रियो को मिलाकर राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गई। इसका काम समय समय पर योजना के कामकाज की समीक्षा करना है। अब तक छह पचवर्षीय योजनाएँ और तीन एक वर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी है। इस समय सातवी पचवर्षीय योजना चौथे वष मे चल रही है।

4 पीछे की स्थिति और मौजूदा कामकाज की कसौटी

(क) पीछे की तरफ झाककर देखें तो बहुत सारे अनुमानो से पता चलता है कि वर्तानवी शासन के आखिरी दशका म आर्थिक ठहराव आ गया था। 1947 के आसपास लोगो की औसत जिंदगी महज 33 साल हुआ करता थी। 1943 मे बगाल के अकाल के दौरान करीब 30 लाख लोग मर गए थे। इस पृष्ठभूमि मे देखा जाए तो भारत का आर्थिक विकास असाधारण दीखता है। 1950 के बाद राष्ट्रीय उत्पादन मे 2 8 गुना वद्धि हुई है।[1] औद्योगिक उत्पादन चार गुना[2] और कृषि उत्पादन तीन गुना[3] बढा है। औसत जीवन अवधि 33 से बढकर 52 वष हो गई है।[4] बहरहाल, किसी नियोजित अर्थव्यवस्था के मूल्याकन के लिए (i) उसकी आर्थिक कथनी और करनी (ii) इसी तरह की दूसरी अर्थव्यवस्थाओ की तुलना मे उसकी उपलब्धिया तथा (iii) तरक्की के लिए अदा की गई कीमत ही उचित मापदड है।

(ख) हम इसके घोषित उद्देश्या और उनकी अपनी अपनी उपलब्धियो से शुरू करते है।

5 कुल आर्थिक विकास

(क) भारतीय नियोजन का सवप्रथम उद्देश्य आर्थिक विकास रहा है। छह *योजनाओ मे विकास दर का औसत वार्षिक लक्ष्य पाच फीसदी रखा गया।*[5] मगर इसकी उपलब्धि कही पीछे यानी 3 5 फीसदी रही।[6] इस दौरान कृषि की विकास दर का लक्ष्य 3 5 फीसदी रखा गया जबकि उसकी उपलब्धि 2 2 फीसदी रही।[7] इसी प्रकार उद्योग की विकास दर का लक्ष्य 7 फीसदी रहा लेकिन यहा उपलब्धि 5 5 फीसदी रही।[8] सातवी योजना के आसार तो और निराशाजनक दीखते हैं। अब तक की सर्वाधिक 3 5 फीसदी विकास दर भी शायद ही पूरी हो पाए।

पंचवर्षीय योजना (1951-56) मे 27 वर्षों मे (यानी 1977 तक) प्रति व्यक्ति आय दुगुनी करने का दूरगामी लक्ष्य रखा गया था पर इस आय की सालाना 1 33 फीसदी वृद्धि (यानी 3 57 फीसदी वार्षिक आर्थिक विकास दर मे से 2 24 फीसदी वार्षिक जनसंख्या विकास दर को घटाकर) को देखते हुए इस लक्ष्य को पूरा करने म 52 साल (यानी सन 2003 तक) लगेंगे। दो ही मामलो मे भारत की विकास दर ऊँची रही है। एक है पूंजी/उत्पादन के अनुपात का उदाहरण जिसका अनुमानित लक्ष्य था 4 फीसदी था पर 1970-79 के दौरान यहा उपलब्धि 8 9 फीसदी रही।[9] दूसरा उदाहरण जनसंख्या की विकास दर का है जहा लक्ष्य तो 1 5 से 2 फीसदी था पर उपलब्धि करीब 2 5 फीसदी रही।[10]

(ख) और फिर, इस अपर्याप्त आर्थिक विकास का फायदा भी लोगो की विभिन्न श्रेणियो को समान रूप से नही मिला है। कृषि क्षेत्र म प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पाद 1950 51 से 1984 85 तक के 34 वर्षों म जहा व्यावहारिक तौर पर बिलकुल नही बढा वही गैर कृषि क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति शुद्ध घरलू उत्पाद सालाना 2 48 फीसदी की विकास दर से बढा।[12] गैर कृषि क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पाद और कृषि क्षेत्र मे प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पाद का अनुपात 1950 51 मे 1 46 था। 1960 61 मे यह बढकर 1 94, 1970 71 मे 2 53, 1980 81 म 2 93 और 1984 85 मे 3 23 हो गया।[13] कृषि और गैर-कृषि क्षेत्रो के बीच बढते अतर की दो वजह हैं। एक तो यह कि कृषि की विकास दर 2 12 फीसदी पर स्थिर जबकि गैर कृषि क्षेत्र मे इसकी दर 4 97 फीसदी है।[14] दूसरी यह कि दोनो क्षेत्रो मे भारी अतर होने के बावजूद कृषि क्षेत्र की जनसंख्या 1950 51 से ही कुल जनसंख्या का करीब दो तिहाई चली आ रही है[15] जबकि गैर कृषि क्षेत्र आंशिक तौर पर सगठित होने से फालतू लोगो के प्रवेश की अनुमति नही देता।

(ग) 1950 और 1980 के बीच भारत की 3 5 फीसदी सालाना विकास दर की तुलना इस अर्से मे उसके राष्ट्रीय उत्पादन की 2 8 गुना वृद्धि से की जाए (1950 51 मे राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय क्रमश 16,731 करोड रु० और 466 करोड रु० से बढकर 1984 85 मे 1970-71 की कीमतो पर क्रमश 57 014 करोड और 772 रु० हो गई) तो हमे पता चलता है कि कुल मिलाकर *विश्व अर्थव्यवस्था औसतन सालाना 4 1 फीसदी की दर से विस्तृत होती गई*[16] *और* इन्ही 30 वर्षों म उसका सकल उत्पाद 3 3 गुना बढा। तीसरी दुनिया म तरक्की की यह रफ्तार इससे भी तेज यानी सालाना 4 9 फीसदी की दर से अथवा भारत की तुलना मे 40 फीसदी अधिक सालाना दर से हुई है।[17] नतीजतन 1950 80 के दौरान तीसरी दुनिया मे सकल उत्पाद भारत के 2 8 गुना के मुकाबले 4 2 गुना बढा।[18] प्रति व्यक्ति आय के आकडे बताते है कि 1950 80 के दौरान भारत मे प्रति व्यक्ति आय 43 फीसदी से अधिक नही बढी (छठी योजना के अतगत 71 फीसदी), वही तीसरी दुनिया ने इसी अवधि मे अपनी प्रति व्यक्ति आय मे दुगुनी से भी ज्यादा वृद्धि

कर ली।[19] आज भारत प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद के क्रम मे 126 देशो की सूची मे 116वें स्थान पर है।[20]

(1) कृषि

भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रवार कामकाज को देखें तो कृषि की उपलब्धियां तीसरी दुनिया के स्तर के मुताबिक भी घटिया हैं। 1973 83 की अवधि के बारे मे खाद्य एव कृषि सगठन के एक अध्ययन[21] से पता चलता है कि भारत का खाद्यान्न उत्पादन सालाना 2 9 फीसदी की दर से बढा जो कि एशिया की 3 5 फीसदी औसत से बहुत नीचे है। चीन (3 फीसदी), बर्मा (6 6 फीसदी), श्रीलका (6 2 फीसदी) और पाकिस्तान (4 6 फीसदी) जैसे भारत के पडोसी देशो मे कृषि का विकास ज्यादा तेजी से हुआ। 1965 80 के दौरान 21 अफ्रीकी देशो से भारत के कृषि विकास की तुलना करते हुए एक और अध्ययन[22] मे कहा गया है कि 10 अफ्रीकी देशो मे तो भारत से भी ज्यादा विकास दर थी। कृषि उत्पादकता के मामले मे भी भारत सबसे कम उत्पादकता वाले देशो की श्रेणी मे है।[23] भारत मे खाद्यान्न का औसत उत्पादन महज 1 6 टन प्रति हेक्टेयर है जो कि चीन के आधे से भी कम है।[24] 1981-82 मे चीन ने 9 5 करोड हेक्टयर भूमि पर जहा 34 40 करोड टन खाद्यान्न का उत्पादन किया, वही भारत 10 5 करोड हेक्टेयर भूमि पर महज 13 9 करोड टन ही उपजा पाया।[25]

खाद्य एव कृषि सगठन के अनुसार[26] भारत मे खाद्यान्न की प्रति हेक्टेयर पैदावार 1286 किलो दालो की 485 किलो, तिलहन की 497 किलो और बिनौले की 502 किलो है। इसके विपरीत दुनिया मे खाद्यान्न की यह औसत पैदावार 1975 किलो, दालो की 683 किलो, तिलहन की 822 किलो और बिनौले की 1259 किलो है। बबई स्थित भारतीय अर्थव्यवस्था प्रबोधक केंद्र का अनुमान है कि 1971 और 1984 के बीच कृषि उत्पादन की प्रति इकाई पर लागत मे 32 फीसदी की वृद्धि हुई।[27] पिछले सात साल की अवधि मे कृषि क्षेत्र अस्थिर चाल से बढा। काश्तकारी वाली जमीन, सिचाई सुविधाओ, अधिक पैदावार देने वाले बीजो और रासायनिक खाद के इस्तेमाल के बावजूद 1978-79 और 1982 83 के बीच खाद्यान्न उत्पादन करीब 13 करोड टन पर अटका रहा।[28] पर 1983 84 मे यह 15 करोड टन हो गया और तब से वही पर स्थिर है।[29] सातवी योजना की मध्यावधि समीक्षा[30] से पता चलता है कि 1987 88 के सूखा वर्ष को छोडकर योजना के पहले वर्ष (यानी 1985-86) मे कृषि की विकास दर महज 0 3 फीसदी और दूसरे वर्ष (यानी 1986 87) मे शून्य से भी 2 6 फीसदी नीचे थी। 1986 87 और 1987 88 के वर्षों मे कुल खाद्यान्न उत्पादन क्रमश 14 41 करोड और 13 7 करोड टन था।[31]

(ii) उद्योग

औद्योगिक क्षेत्र मे पहली तीन पचवर्षीय योजनाओ (1951 से 1965) के दौरान सालाना करीब 7 7 फीसदी की[32] और उसके बाद चौथी, पाचवी और छठी पचवर्षीय योजनाओ (1971 स 1985) के दौरान सालाना 4 3 फीसदी की वृद्धि हुई।[33] एक और अध्ययन[34] भारत और समूची तीसरी दुनिया के औद्योगिक विकास की तुलना करते हुए 1950 और 1980 के बीच भारत की सालाना विकास दर 4 1 फीसदी अथवा कुल मिलाकर 3 3 गुना वृद्धि बताता है जबकि समूची तीसरी दुनिया के लिए यह आकडा 6 3 फीसदी अथवा 6 3 गुना है। प्रति व्यक्ति आधार पर भारत मे औद्योगिक उत्पादन महज 76 फीसदी बढा जबकि समूची तीसरी दुनिया मे इसमे 234 फीसदी की बढोतरी हुई। भारत की विकास दर भी विश्व की दर से कम है।

विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार[35] भारत आज अल्पविकसित देशो मे चौथे और विश्व स्तर पर 12वें नबर पर है। भारत के महज 30 अरब डालर मूल्य के औद्योगिक उत्पादन के मुकाबले 1984 मे (1980 की कीमतो पर) चीन का 144 अरब डालर का उत्पादन उससे कही ज्यादा था। ब्राजील (57 अरब डालर) और मक्सिको (43 अरब डालर) का नम भी भारत से ऊपर है। दक्षिण कोरिया ने 1970 से अपन औद्योगिक उत्पादन मे छह गुना वृद्धि की है और इस समय 27 अरब डालर का उत्पादन करके वह भारत के समकक्ष होन जा रहा है। चीन के औद्योगिक उत्पादन का मूल्य 1970 84 के दौरान 209 फीसदी बढा, इसके बाद 90 और 101 फीसदी के साथ क्रमश ब्राजील और मेक्सिको का नबर रहा जबकि इनके मुकाबले इसी दौर मे भारत की वृद्धि 84 फीसदी थी। 1980 85 के दारान चीन का औद्योगिक उत्पादन सालाना 13 4 फीसदी और पाकिस्तान का 10 फीसदी बढता रहा। इसके मुकाबले इसी अवधि म भारत की औद्योगिक विकास दर महज 5 6 फीसदी थी, भारत मे प्रति कमचारी औद्योगिक उत्पादन (औद्योगिक उत्पादकता का एक पमाना) 1980=100 के आधार पर 1985 तक 128 पर ही पहुँच पाया जबकि पाकिस्तान और दक्षिण कोरिया का यह सूचकाक क्रमश 158 और 149 था।

सावजनिक क्षेत्र

भारतीय उद्याग का समूचा ममस्थल—इस्पात बिजली तेल, गैस, खाद, कोयला भारी इजीनियरिंग बिजली की भारी मशीनें आदि सावजनिक क्षेत्र के अधीन है। 1951 म 29 करोड रु० के निवेश के साथ पाच उपक्रमो से स्थापित हुआ यह क्षेत्र 1986 तक बढकर 53 000 करोड र० की लागत वाले 225 उपक्रमो मे विकसित हो गया।[36] इसलिए आर्थिक विकास के लिए सावजनिक क्षेत्र का कामकाज भारी महत्व का है। पहले 30 वर्षों (1950 से 1980) मे सावजनिक क्षेत्र ने कोई

शुद्ध लाभ नहीं कमाया। 1981 82 में इसने 485 करोड़ रु० का शुद्ध लाभ कमाया।[3] अगर उस साल के 21 865 करोड़ रु० के निवेश पर यह लाभ 2 2 फीसदी लाभ ही बनता था। 1987-88 में सार्वजनिक क्षेत्र ने 1748 83 करोड़ रु० का शुद्ध लाभ कमाया जबकि इससे पहले साल 1831 89 करोड़ रु० था।[38] जाहिर है भाग 2 5 फीसदी का यह लाभ कुल निवेश पर देय ब्याज से भी कम था। उद्योगों के आधार पर विश्लेषण करें तो पता चलता है कि 1987 88 में 2074 57 करोड़ रु० के लाभ के साथ पेट्रोलियम उद्योग लाभ कमाने वाले उद्योगों में अग्रणी था। इसके बाद दूर संचार सेवा उद्योग (291 87 करोड़ रु०) और बिजली उद्योग (241 84 करोड़ रु०) का स्थान है।[9] अगर इन तीनों उद्योगों और रेलवे को छोड़ दें तो सार्वजनिक क्षेत्र में हानि ही हानि है। 1987 88 के दौरान घाटे वाले उद्योगों में कोयला उद्योग (307 04 करोड़ रु०) अग्रणी था। इसके बाद कपड़ा उद्योग (177 38 करोड़ रु०) रसायन उर्वरक और दवा उद्योग (166 95 करोड़ रु०) तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योग (129 87 करोड़ रु०) का स्थान था।[40] केंद्र ने जिन 191 बीमार उपक्रमों को हाथ में ले रखा है, उनमें 37 में 1987-88 के दौरान 401 10 करोड़ का घाटा हुआ जबकि इससे पहले साल उनका घाटा 271 50 करोड़ रु० था।[41] यह 'उपलब्धि' भी सरकार द्वारा हर साल अपने घाटे की भारी मात्रा को कम करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ाते जाने के कारण ही संभव हुई है। सार्वजनिक क्षेत्र और बड़े निजी क्षेत्र में निवेश पर लाभ की तुलना करने से पता चलता है कि जहां सार्वजनिक क्षेत्र को शुद्ध हानि अथवा 2 से 3 फीसदी शुद्ध लाभ हुआ वहीं बड़े निजी क्षेत्र ने 8 2 और 14 1 फीसदी के बीच शुद्ध लाभ कमाया है।[42] इन दोनों क्षेत्रों के बीच एक और अंतर यह है कि जहां निजी क्षेत्र में स्थायी परिसंपत्ति के लिए धन मुख्य रूप से अंदरूनी साधनों (यानी कर उपरांत लाभ में से लाभांश, मशीनों की घिसाई और बट्टा खाता घटाने के बाद) जुटाया जाता है वहीं सार्वजनिक क्षेत्र में यह मूलतः बाहरी साधनों (यानी नकदी वाले शेयरों उधार, विविध ऋणदाताओं और दूसरी तत्कालिक देनदारियों) पर निर्भर होता है।

निजी क्षेत्र

इस क्षेत्र का कामकाज भी समान रूप से खेदजनक है। पहली बात तो यह है कि सरकार की ओर से दी गई विभिन्न सुविधाओं (जैसे जल्दी और ज्यादा मुनाफे वाले उपभोक्ता उद्योगों का काम, विदेशी प्रतियोगिता से पर्याप्त सुरक्षा तथा टेक्नालॉजी, संस्थागत ढांचों, सस्ते श्रम और सरकारी पैसे की उपलब्धता) का फायदा उठाकर और सरकारी टैक्सों व उचित मजदूरी की अदायगी से बचकर य बेहिसाब आमदनी जुटा लेता है। इस प्रकार वह सरकार, मजदूर वर्ग और की ठगी करता है। दूसरे, इन सुविधाओं का उपभोग करने के बावजूद

रुग्णता का शिकार है। निजी क्षेत्र में दस लाख से अधिक उद्यमों म से इस समय 1,47,740 औद्योगिक इकाइयां बीमार हैं[43] और इन पर 4,874 करोड रु० का बैंक कर्ज बकाया है।[44] राजीव सरकार के पिछले तीन साल के दौरान ही करीब 40,000 फैक्टरियां बंद हुई हैं, जिनसे लगभग दो लाख लोग बेरोजगार हो गए हैं[45] तीसरे, पिछले पांच साल से गठजोड की बेहद गुंजाइश के बावजूद विदेशी संयुक्त उद्यमों मे खासकर तीसरी दुनिया के देशों मे भारतीय निजी निवेश वस्तुत स्थिर रहा है। यह बात फेडरेशन आफ इंडियन चेंबस ऑफ कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री के 1987 के एक अध्ययन मे कही गई है। जुलाई 1986 तक विदेशों के संयुक्त उद्यमों म कुल भारतीय निजी निवेश 114 13 करोड रु० था जबकि दिसंबर 1985 मे यह 114 20 करोड रु० था।[46] चौथे, शेयर बाजार (जिसके अब करीब 20 लाख सदस्य हैं) काफी हद तक पुराने तरीकों व संस्थाओं द्वारा चलाए जाने के कारण संकट म चला आ रहा है, हालांकि निजी क्षेत्र को उसके स्वस्थ कामकाज की जरूरत है। पांचवें, सुरक्षित क्षेत्र होने की वजह से यह देश और विदेश मे उच्च लागत वाला गैर प्रतियोगी क्षेत्र है।

निजी क्षेत्र की बडी उपलब्धि यह है कि पहले ही अमीर बडी तेजी से और ज्यादा अमीर हुए हैं। एकाधिकार जांच आयोग का अनुमान था कि निजी कंपनी क्षेत्र (बैंक कंपनियों को छोडकर) की 1964 म कुल संपत्ति 5,500 करोड रु० थी। इसमे स 46 फीसदी 75 बडे औद्योगिक घरानों और 33 फीसदी 20 बडे औद्योगिक घरानों की थी। इन बडे औद्योगिक घरानों की संपत्ति 1963 64 म 1,780 करोड रु० से बढकर 1986 87 मे 23,154 करोड रु०[47] हो गई यानी इसम 13 गुना वृद्धि हुई। एक ही साल (1985 86) मे अकेले रिलायंस इंडस्ट्रीज ने अपनी संपत्ति मे करीब 1,000 करोड रु० का इजाफा किया (1,056 करोड रु० से बढकर यह 2,021 करोड रु० हो गई) जबकि बिडला घराने की संपत्ति 4,111 करोड रु० से बढ़कर 4,606 करोड रु० और टाटा घराने की 3,698 करोड रु० से 4,348 करोड रु० हो गई।[48] एकाधिकार जांच आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक बडे औद्योगिक घरानों की यह आश्चर्यजनक वृद्धि औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली और दूसरे नियंत्रणों के कारण हुई है। बडे भारतीय औद्योगिक घराने निजी कंपनी क्षेत्र से कैसे अनुचित मुनाफा बटोर रहे हैं इसकी झलक आप्रवासी भारतीय उद्योगपति स्वराज पाल द्वारा *19 अगस्त 1983 को प्रेस क्लब आफ इंडिया म की गई टिप्पणी से मिलती है।*[49] उन्होंने कहा था, "दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि देश के मात्र 11 कारोबारी घराने उस उद्योग पर नियंत्रण जमाए हुए है जिसमे सार्वजनिक संस्थानों ने करीब 27,000 करोड रु० का निवेश कर रखा है जबकि इन घरानों का अपना निवेश महज 148 करोड रु० है", और कि ये "11 औद्योगिक घराने वित्तीय लाभों का एक बडा हिस्सा अपने स्वार्थों म लगा रहे हैं तथा कुछ अनुमानों के अनुसार उन्होंने 25,000 करोड रु० विदेशी बैंकों मे जमा करा रखे हैं।" अभी तक इन घरानों ने इस टिप्पणी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की है।

(iii) संरचनात्मक उद्योग

संरचनात्मक उद्योग के सभी प्रमुख क्षेत्रों—बिजली, रलवे, इस्पात, सीमेंट आदि मे वृद्धि हुई है। लेकिन उनके अपने अपने नियोजित लक्ष्य पूरे न हो पाने से आर्थिक प्रक्रिया मे निरंतर बाधाए खडी हुई है। बिजली के क्षेत्र म छठी योजना का लक्ष्य 5 12 करोड किलोवाट का था जबकि असल पूर्ति 4 71 करोड किलोवाट ही हो पाई।[50] रेल ढुलाई के मामले मे छठी योजना का लक्ष्य 30 9 करोड टन था जबकि असल पूर्ति 26 5 करोड टन रही।[51] परिष्कृत इस्पात के क्षेत्र म छठी योजना का लक्ष्य 11 5 करोड टन था पर असल पूर्ति 8 8 करोड टन हुई।[52] सीमेंट के मामले मे छठी योजना का 3 45 करोड टन था मगर असल पूर्ति 2 95 करोड टन रही।[53] आपूर्ति मे इस कमी की झलक समूचे भारत म बिजली के संकट (इस कमी का अनुमान 10,000 मेगावाट है),[54] रेलगाडियो म भारी भीड तथा इस्पात व सीमेंट की ऊची कीमतो से मिलती है।

(iv) शिक्षा और स्वास्थ्य

सार्वजनिक शिक्षा के मामले मे संविधान मे प्रावधान है कि लागू होने के 15 वर्ष के भीतर (यानी 1965 तक) सबको शिक्षित किया जाना है। लेकिन इस लक्ष्य के 22 वर्ष बाद भी भारत की 64 फीसदी जनता अनपढ चली आ रही है। भारत की 36 फीसदी साक्षरता दर के मुकाबल बर्मा मे यह 70 फीसदी और श्रीलका मे 85 फीसदी है।[55] समय के साथ साथ निपट अनपढो की संख्या मे भी वृद्धि हुई है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत मे अनपढो की संख्या 5 वर्ष स कम आयु वाले बच्चो को मिलाकर 33 4 करोड थी। 1971 म यह संख्या करीब 38 7 करोड और 1981 म करीब 43 7 करोड हो गई। अनपढो की बढती संख्या न सिर्फ जीवन स्तर सुधारने बल्कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के आधुनिकीकरण मे भी रुकावट है। आज भारत शिक्षा पर 1950 की तुलना मे प्रति व्यक्ति आधी रकम ही खर्च कर रहा है[56] और अनुमान है कि शिक्षा बजट का 90 फीसदी अब शिक्षको की तनख्वाह पर ही खर्च हो रहा है।[57] पहली योजना राशि का 7 8 फीसदी शिक्षा के लिए रखा गया था पर सातवी योजना म यह घटकर 3 5 फीसदी रह गया है।[58] शिक्षा संबंधी बंदोबस्त को देखें तो भारत मे करीब 94,000 प्राइमरी स्कूल बिना किसी इमारत के चल रहे हैं[59] और 1,92,000 से ज्यादा स्कूलो मे कोई चटाई या फर्नीचर तक नही,[60] 40 फीसदी मे ब्लैक बोर्ड नही,[61] 70 फीसदी मे बच्चो के लिए पुस्तकें नही,[62] और 80 फीसदी मे शौचालय की व्यवस्था नही।[63]

सार्वजनिक स्वास्थ्य के मामले मे देश मे सफाई और स्वास्थ्य सुधार के लिए अनेक योजनाएँ शुरू की गई हैं लेकिन आकडे अपनी कहानी खुद कहते हैं। हीनता (विटामिन ए की कमी से), कोढ और तपेदिक के मामले मे भारत दुनिया

अग्रणी है।[64] यहा 3,690 लोगो के पीछे एक डॉक्टर और 5,460 लोगो के पीछे एक नर्स है।[65] दो तिहाई भारतीयो का पीने का साफ पानी उपलब्ध नही और लग भग आधे गावो मे न कोई सडक है, न बिजली।[66] कहा जाता है कि राष्ट्र के स्वास्थ्य की नब्ज अक्सर शिशुओ की मृत्यु दर से पहचानी जाती है। दिलचस्प बात है कि चीन मे शिशु मत्यु दर भारत की तुलना मे करीब एक तिहाई है।[67] यदि चीन आधुनिक तकनीक के बिना शिशु मृत्यु दर कम कर सकता है तो भारत क्या नही ? अब उस सरकारी योजना का भारी प्रचार किया जा रहा है जिसका लक्ष्य 'सन् 2000 ई० तक सबके लिए स्वास्थ्य रखा गया है। लेकिन पुराना अनुभव (जो अक्सर भविष्य का सूचक होता है) बताता है कि काग्रेस की 40 साल की स्वास्थ्य सबधी रणनीति क चलते रहने के बाद भी भारत स्वास्थ्य के क्षेत्र म एशियाई देशो म नीचे से तीसरे स्थान पर ही है।[68]

6 आधुनिकीकरण

भारतीय नियोजन का दूसरा उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को आधुनिक बनाना रहा है। 1947 उपरात भारत मे आधुनिकीरण का मतलब आर्थिक गति विधियो मे एस सरचनात्मक और सस्थागत परिवर्तन लाना रहा है जिनसे पुरानी औपनिवेशक और कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को बदला जा सके। यह परिवर्तन सक्षेप म तीन सघटको मे परिवर्तन से गठित रहा। एक तो राष्ट्रीय आय व रोजगार के ढाचे म बदलाव पर जोर दिया गया। दूसर, अर्थ यवस्था के ऐस विविधीकरण पर ध्यान दिया गया जिसम अनेक किस्म की वस्तुओ का उत्पादन हो सके। तीसरे, टेक्नोलॉजी की तरक्की की तरफ रुझान रहा।

(1) राष्ट्रीय आय का ढाचा

राष्ट्रीय आय के ढाचे म बदलाव पर नजर डालन से पता चलता है कि 1950 51 मे विभिन्न क्षेत्रो का राष्ट्रीय आय मे निम्न योगदान था[69]—प्राथमिक क्षेत्र (अर्थात कृषि और उससे जुडी गतिविधिया) 59 फीसदी, द्वितीय क्षेत्र (अर्थात् उद्योग, बिजली और इनसे जुडी गतिविधिया) 14 40 फीसदी, और तृतीय क्षेत्र (अर्थात् व्यापार, परिवहन सचार, बैंक, बीमा, प्रशासन और इनस जुडी सेवाएँ) 26 60 फीसदी। इसक मुकाबले 1985 86 म राष्ट्रीय आय म विभिन्न क्षेत्रो का योगदान इस प्रकार था [0]—प्राथमिक क्ष त्र 37 फीसदी, द्वितीय क्षेत्र 21 9 फीसदी और तृतीय क्षेत्र 41 1 फीसदी। विभि न क्षत्रो के इस विश्लेषण से पता चलता है कि राष्ट्रीय आय म कृषि के योगदान म कमी हुई है और इसकी पूर्ति सेवा क्षेत्र ने की है जबकि औद्योगिक क्षेत्र म योगदान म हुई बढ़ोतरी अभी भी कम है। लेकिन य परिवर्तन निम्न कारणो से किसी बडे सरचनात्मक परिवर्तन का सकेत नही देत।

पहली बात तो यह कि सेवा क्षेत्र के हिस्से मे वद्धि मुख्यतया प्रशासन, प्रतिरक्षा और होटलो व रेस्तराओ के योगदान के कारण हुई है जबकि सरचनात्मक ढाचे के लिए महत्वपूर्ण परिवहन और सचार ने बहुत कम योगदान दिया है। दूसरे औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से मे हुई थोडी सी वद्धि 1951 65 के दौरान ही हुई थी और 60 वाले दशक के मध्य से इसमे ठहराव-सा चला आ रहा है। तीसरे सबसे महत्वपूर्ण यह है कि श्रम के क्षेत्रवार ढाचे मे कोई महत्वपूर्ण बदलाव नही हुआ। कृषि क्षेत्र मे अब भी 70 फीसदी श्रम शक्ति लगी हुई है। काश्तकारो के मुकाबले कृषि मजदूरो का अनुपात 1961 मे श्रम शक्ति के 17 2 फीसदी से बढकर 1971 मे 26 9 फीसदी हो गया और 1981 की जनगणना के अनुसार लगभग 25 फीसदी है। सारी श्रम शक्ति मे उद्योगो के हिस्से मे 1960 से कोई बदलाव नही आया और यह करीब 11 फीसदी कायम है। इस तरह कृषि मे लगी और 1950-51 मे 59 फीसदी राष्ट्रीय आय पर बसर कर रही 70 फीसदी श्रमिक शक्ति को अब 37 फीसदी राष्ट्रीय आय पर गुजारा करना पड रहा है। यह उलटा रुझान औद्योगिक क्षेत्र के तीव्र विकास से ही बदल सकता है।

(ii) अर्थव्यवस्था मे विविधता किस हद तक

जहा तक अर्थव्यवस्था के विविध क्षेत्रो के विकास का ताल्लुक है भारतीय अर्थव्यवस्था का ढाचा इस हद तक बदल गया है कि इसके पारपरिक उद्योगो (जैसे चीनी, कपडा पटसन आदि) का महत्ता कम हो गई है जबकि नए उद्योगो (जैसे इजीनियरिंग, रसायन आदि) को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। लेकिन विविधीकरण की इस प्रक्रिया मे कई खामिया हैं। पहली तो यह कि प्रथम तीन पचवर्षीय योजनाओ (1951 से 65) के दौरान यह प्रक्रिया औसत गति से आगे बढी है जबकि '60 वाले दशक के मध्य से इसकी रफ्तार बहुत धीमी रही। दूसरे, पिछले चार दशको के दौरान इसकी औसत विकास दर नियोजित लक्ष्य से पीछे रही है। तीसरे, इसमे अकुशलता की खासियत रही है। यह अकुशलता उत्पादन की ऊँची लागत (मसलन भारतीय स्टील अतरराष्ट्रीय कीमतो पर उपलब्ध स्टील से सवा दो गुना महगा है, भारत मे बिजली औसत अतरराष्ट्रीय कीमत से 4 गुना और ताबा 3 गुना महगा है जबकि गेहू उत्पादन की लागत ऑस्ट्रेलिया और अर्जेंटीना आदि से चार गुना ज्यादा है), उत्पादकता के निम्न स्तर (मसलन भारत मे गहू का औसत उत्पादन 1,236 किलो प्रति हेक्टेयर है जबकि यूरोपीय साझा बाजार के देशो मे यह 6,000 से 8,000 किलो और चीन मे 4 000 किलो प्रति हेक्टेयर है) पूजी/उत्पाद के बढते अनुपात, सार्वजनिक क्षेत्र मे घाटे, क्षमता का कम उपयोग (यह क्षमता उद्योग से उद्योग और साल दर साल बदलती रहती है तथा स्टील ढलाई, साइकिल ट्यूब, खनन, कोयला धुलाई मशीनरी, सीमेट मिल मशीनरी, भवन व सडक निर्माण मशीनरी आदि जसे कई इसके शिकार हैं), तथा उद्योग की रुग्णता (जिसकी लपट मे कपडा, स्टील की

इकाइयां आदि हैं) से चलती है। चौथे, इसमें क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हो गया है, जिसके चलते कई राज्यों को बड़ा हिस्सा मिलता है। फैक्ट्री क्षेत्र के लिए उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षण (1979 80) के अनुसार नौ राज्यों—आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश महाराष्ट्र, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भारतीय उद्योग भारी मात्रा में (करीब 80 फीसदी) है।

(iii) टेक्नोलॉजी

टेक्नोलॉजी सुधार के मामले में भारत का रिकार्ड निराशाजनक है। यह बहुत हद तक आयातित टेक्नोलॉजी पर आश्रित रहा है। 1951 और 1986 के बीच भारत ने विदेशों से तकनीक आयात करने के लिए 2,219 समझौता पर हस्ताक्षर किए। टेक्नीकल फीस और रायल्टी के रूप में आयातित टक्नालॉजी के कुल भुगतान में भी भारी वृद्धि हुई है। 1964 65 में यह राशि चार करोड़ रु० से बढ़कर 1972 73 में 18 6 करोड़ रु० हो गई।[71]

तकनीकी अनुसंधान विकास पर भारत का वार्षिक खर्च कम है। बिड़ला वैज्ञानिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित एक अध्ययन के मुताबिक[72] 1950 51 से 1980 81 के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था में तकनीकी विकास दर सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 0 7 फीसदी और 1 1 फीसदी के बीच रही जबकि पूंजी संचय में वृद्धि की दर इसी दौरान करीब 4 7 फीसदी रही। नेहरू शासन के दौरान अनुसंधान एवं विकास पर कुल खर्चा 1958 के आसपास सकल राष्ट्रीय उत्पाद का मात्र 0 23 फीसदी था।[73] अधिकांश विकसित देशों ने तकनीकी विकास की दर 2 5 से 3 फीसदी के बीच हासिल कर ली है।[74]

7 आत्मनिर्भरता

भारतीय नियोजन का तीसरा उद्देश्य विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करके, आयात के अनुकल्प ढूंढकर तथा निर्यात को बहुमुखी विस्तार देकर अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना (यानी अपने संसाधनों और निधि पर निर्भर करते हुए अधिकतम आर्थिक लाभ कमाना) था।

(i) विदेशी कर्ज

भारतीय नियोजन की विदेशी सहायता पर निर्भरता गंभीर स्थिति में पहुंच चुकी है। विदेशी सहायता की राशि (जिसमें अनुदान व ऋण दोनों शामिल हैं और जिसमें अनुदान मुक्त सहायता के रूप में है जबकि ऋण मय ब्याज चुकाना होता है) इतनी ज्यादा हो चुकी है कि भुगतान की समस्या ज्यादा कठिन हो गई है। वर्षों तक सरकार यह बहाना करती रही कि विदेशी कर्ज नगण्य है। लेकिन अब सरकारी बयानों

मे भी चिंता जताई जाने लगी है। फरवरी 1988 के बजट सत्र मे सरकार ने बताया कि भारत पर 22,517 करोड रु० विदेशी कज है मगर 24 नवबर 1988 को सरकार ने फिर लोकसभा मे बताया कि माच 1988 क अत तक विदेशी ऋण 54,817 करोड रु० यानी अदरूनी कज का करीब दो तिहाई था। अब हम विदेशो से सालाना लगभग 6 000 करोड र० उधार लेते हैं। यह रकम 1980 81 की तुलना मे तीन गुना ज्यादा है। शुरू मे योजनाकारो का अनुमान था कि चौथी योजना के अत (1976) तक विदेशी सहायता पर भारत की निभरता खत्म हो जाएगी जबकि पाचवी योजना का लक्ष्य था कि भारत 1985 86 तक आत्मनिभर हो जाएगा। लेकिन विदेशी कज के मामले म स्थिति गभीर है। इस साल खतर के तीन सकेत मिले है। एक तो नौवें वित्त आयाग ने दूसरे भारत के महालखाकर ने ससद के समक्ष रखी अपनी रिपोट मे और तीसर रिजव बैंक ने अपनी वार्षिक रिपाट मे ये सकेत दिए। ये रिपोर्टें भारत के विदेशी कज के बारे म बहुत सारी चिंताजनक बातो की तरफ इशारा करती है। 1984 85 म विदेशी कज का भुगतान कुल निर्यातो से होन वाली आय का महज 13 6 फीसदी था और यह स्तर काफी सुरक्षित था। तब से लेकर यह गुब्बारे की तरह ऊपर ही ऊपर उठता जा रहा है 1985-86 मे यह 21 2 फीसदी, 1987 88 म 24 1 फीसदी और चालू वष म 27 2 फीसदी तक पहुच गया है। इसम निजी कर्जों का भुगतान शामिल नही है। यदि सरकारी और निजी विदेशी कज भुगतानो को जोडा जाए तो यह 33 फीसदी से भी ज्यादा बैठेगा। लेकिन वाशिगटन स्थित अतर्राष्ट्रीय वित्त सस्थान के अनुसार 1986-87 मे भारत के विदेशी कज का भुगतान 47 अरब डालर के कुल विदेशी कज का 33 5 फीसदी हो चुका था। भारत निश्चित रूप स विदेशी कज के जाल म फस गया है क्योकि विदेशी कज भुगतान के रूप मे आयात 25 फीसदी से ज्यादा बढते ही खतरनाक माना जाता है। ऐसी स्थिति मे बाहर जाने वाले ससाधन देश मे आने वाले ससाधनो से कही ज्यादा होत है। ज्यादा भयावह स्थिति तो सावजनिक कज की है जो माच 1987 मे सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 64 फीसदी था[76] (1987 म 99,520 करोड रु० और 1988 मे 1,10 000 करोड रु०)। पिछले पाच वर्षो म सरकार द्वारा सावजनिक कज पर ब्याज भुगतान मे 250 फीसदी की वृद्धि हुई है यानी 1987 88 मे यह कुल कर प्राप्तियो का 21 9 फीसदी हो गया है।[77]

विदेशी और अदरूनी कर्जों मे नाटकीय वद्धि का मुख्य कारण बजट और विदेशी व्यापार का बढता घाटा है। विदेशी व्यापार का घाटा 1970 71 के 99 करोड र० से बढकर 1985-86 म 8,735 करोड रु० हो गया।[8] चालू वष मे केंद्र सरकार के बजट मे 7,484 करोड रु० के घाट को बिना पूरा किए छोड दिया गया। इसके अतिरिक्त राज्यो का घाटा 842 करोड रु० का था। लेकिन पाच वष पहले इनका सयुक्त घाटा लगभग 1,600 करोड रु० ही था।[79] मौजूदा रुझानो अनुसार केंद्रीय घाटा खतर की सीमा पार कर गया है और चालू वष के

12,000 करोड रु० तक जा सकता है।[80] यह एक रिकार्ड वृद्धि है जा सकल राष्ट्रीय उत्पाद का करीब 3 5 फीसदी है। राज्यो के लिए घाटे की सीमा जहा बजट का मात्र एक फीसदी मुकरर है वही केंद्र के लिए यह सीमा 10 फीसदी है। बजट म भारी घाटे से कीमतो म वद्धि होती है जिससे रहन सहन और विकास कार्यों का खच बढ जाता है। भारी मात्रा मे विदेशी व अदरूनी कज और बजट म घाटा सरकार को दिवालिएपन की तरफ ले जा रहे है। 1988 मे इसकी कुल देनदारी 2,24,180 करोड रु० मूल्य की और कुल परिसपत्ति मात्र 1 84,100 करोड रु० की थी यानी देनदारी 40 080 करोड ज्यादा है।[81]

भारतीय अथ यवस्था को ससाधनो की कमी का सामना है। पिछले दशक के दौरान उसकी बचत दर म लगातार कमी होती रही है। बचत दर 4 वष पहले 24 फीसदी थी जबकि दो वष पहले घटकर 18 फीसदी रह गई है।[82] दूसरी तरफ निवश मे लगातार वद्धि हो रही है। निवेश और बचत के अतर को प्रतिदिन 20 करोड रु० उधार लेकर और घाटे की अथव्यवस्था के जरिए(यह भी प्रतिदिन 20 करोड रु० है) पूरा किया जा रहा है।[83]

रुपए क बाहरी मूल्य मे तेजी से कमी हुई है। चार साल पहले पौंड स्टर्लिंग 15 15 रु० मूल्य का था। नवबर 1988 म इसका मूल्य 27 40 रु० क बराबर पहुच गया है। यह खतरे का सकेत है। क्योकि भारत को सोने की तस्करी और इससे रुपए के अवमूल्यन के कारण अरबो रुपए का(एक अनुमान क अनुसार 10 000 करोड रु० का—टाइम्स आफ इडिया, 7 12 1988, पृ० 4) विदशी मुद्रा का नुक-सान हो रहा है।

(ii) आयात प्रतिस्थापन

जहा तक आयात प्रतिस्थापन (अर्थात बाहर से मगाई जाने वाली वस्तुओ का देश म ही निर्माण करने और इस प्रकार देश के औद्योगीकरण और विदशी मुद्रा को बचाने) का सबध है, भारत इस उद्देश्य म अभी तक सफल नही हुआ है। 1947 के बाद स भारत ने 13,000 विदेशी सहयोग के अनुबध किए है।[84] लेकिन सहयोग वाली कोई भी इकाई आयात के मामले म स्वायत्त नही बन पाई और बिना किसी आयात तत्व वाली कोई भी बडी औद्योगिक इकाई स्थापित नही की जा सकी हैं।[85] आयात प्रतिस्थापन की रणनीति आम तौर पर दो रूप लेती है— स्वायत्त आयातित प्रतिस्थापन' और आयातित आयात प्रतिस्थापन'। पहला माडल जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान आदि ने अपनाया जबकि भारत ने दूसरे माडल को चुना जिसस औद्योगीकरण की प्रक्रिया तकनीक, वित्त और सेवाओ के आयात पर अधिक निभर हो गई।

(iii) निर्यात प्रोत्साहन

जहा तक निर्यात की विविधता (अर्थात विकास पर आधारित निर्यात की रणनीति जिसस आयात के भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा की कमाई होती है और जिसके मुताबिक निर्यात विकास का इजिन होता है) का सवाल है, भारत की उपलब्धि बिलकुल असतोषजनक है। यह निम्न स्थानो स जाहिर है। पहली बात तो यह है कि 35 वर्षों म निर्यात लगभग 18 गुना बढा है[86] (1950 51 मे 600 करोड रु० से बढकर 1985 86 मे यह 11,012 करोड रु० हो गया)। यह वद्धि कीमतो मे बढोतरी को ही प्रकट करती है, आयात की मात्रा म वद्धि का नही। दूसरे, निर्यात की विविधता उन कुछ उत्पादो तक ही सीमित रही है जिनकी मात्रा भी सीमित रही है। तीसर, भारतीय निर्यात अतरराष्ट्रीय बाजार के उतार चढावो के अनुरूप ढलने मे असफल रहा है। चौथ, एक अहितकर प्रवत्ति यह रही है कि विश्व व्यापार मे भारत का हिस्सा लगातार कम होता रहा है (जो 1950 51 मे 2 4 फीसदी स घटकर पिछले कुछ वर्षों म मात्र 0 5 फीसदी रह गया है)।[87] इस घटिया उपलब्धि के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—पारपरिक निर्यात पर बहुत ज्यादा निभरता, प्रतियोगी स्थिति मे न पहुचना, पर्याप्त घरलू बाजार की उपलब्धता निम्नकोटि के सस्थागत प्रबध (जैसे कि जानकारी, ऋण सुविधाए आदि) तथा बाहरी दबाव (जैस मदी की हालत, सरक्षणवाद आदि)।

8 सामाजिक न्याय

भारतीय नियोजन का चौथा उद्देश्य कमजोर तबको के जीवन स्तर को सुधारकर, बेरोजगारी को दूर करके तथा आय और परिसपत्तियो के वितरण मे विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों म भारी असमानताओ का दूर करके गरीबो को समाजिक न्याय प्रदान करना रहा है।

(i) गरीबी

कमजोर तबको के जीवन स्तर को सुधारने के मामले म स्थिति बहुत निराशा-जनक रही है। गरीबो के जीवन स्तर को सुधारन मे सारी योजनाए असफल हो गई हैं। उनकी गरीबी की तस्वीर भयावह है। यह तस्वीर सरकारी सोच क आधार पर खीची गई है जिसके अनुसार भारत म गरीब वे हैं जो पहले ही से तय न्यूनतम उपभोग स्तर—गरीबी रेखा—से कम खच करते हैं। न्यूनतम उपभोग खच पहले ही से तय न्यूनतम पोषण मापदड पर आधारित है। यह मापदड मानव अस्तित्व के लिए जरूरी कैलॉरी सख्या पर आधारित है जिसे भोजन की निश्चित मात्रा स प्राप्त किया जा सकता है। निश्चित कीमतो पर उस भोजन सामग्री को खरीदने के लिए जितने

रुपयो की जरूरत होती है, उसे न्यूनतम उपभोग खर्च माना जाता है। कोई भी व्यक्ति जो इस राशि से कम खर्च मे गुजर बसर करता है उसे गरीब माना जाता है। इस प्रकार के सारे लोग ही मिलकर भारतीय जनसख्या का वह हिस्सा बनते हैं जो गरीबी रेखा से नीचे जिंदगी बसर करता है। स्पष्टतया, यह सोच पूणतया एकपक्षीय है क्योकि मात्र खाद्यसामग्री को ही इसमे शामिल किया जाता है और बाकी जरूरी चीजें जसे पीने का साफ पानी, कपडा, शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य सुविधाए आदि इसम शामिल नही हैं। लेकिन इस सामान्य त्रुटिपूण रवैए के बावजूद विभिन्न गरीबी जाच विशेषज्ञो (बद्धन—1970 और 1973, दाडकर और रथ—1971, मिन्हास—1974, अहलूवालिया—1978, सुखात्मे—1978 तथा विभि न राष्ट्रीय सपल सर्वेक्षणो आदि) न गरीबी के विभिन्न अनुमान प्रस्तुत किए हैं क्योकि पोषण के बारे मे उनके मापदडो और खच का न्यूनतम स्तर निर्धारित करने म उनके द्वारा चुने गये मूल्य सूचकाको म भिन्नता थी। लेकिन ये सब जाचें साफ सकेत देती है कि यह समस्या कितनी विकराल और व्यापक है। विकास के बार मे सयुक्त राष्ट्र की हाल ही की रिपोट[88] बताती है कि 1965 मे निपट गरीबो की सख्या 35 करोड थी जो 1977 मे 80 करोड और 1986 म तीन गुना बढकर 100 करोड से ज्यादा हो गई। इनमे 30 फीसदी गरीब भारत मे रहते हैं। यही दुनिया के सबस ज्यादा गरीब बसते हैं। इस लिहाज से भारत के गरीबो की आबादी अफ्रीकी महाद्वीप या लेटिन अमेरिका या दुनिया के तीसरे सबसे बडे मुल्क सोवियत सघ की आबादी से भी ज्यादा है। केंद्रीय उर्जामत्री बसत साठे के अनुसार 1981 82 मे भारत की 70 करोड आबादी मे से 60 करोड (जो उस समय करीब 85 फीसदी बनती थी) गरीबी की रखा पर या उसके नीचे बसर कर रही थी।[89] इसम वह सौभाग्यशाली वग (करीब 8 52 करोड लोग) शामिल नही जिसमे प्रति व्यक्ति 1200 रु० या उससे ज्यादा प्रतिवष खच करता है और जिसके इदगिद सारी आर्थिक गतिविधिया केंद्रित हैं।[90] भारतीय लोगो के एक हिस्से की समृद्धि का दूसरा आर्थिक सूचक आयकर रहा है। 1979 80 म कुल आयकरदाताओ की सख्या 18 लाख से ऊपर थी। करीब 75 फीसदी कर उन लोगा ने भरा जिनकी अनुमानित आय एक लाख रु० या इसस ज्यादा थी। ऐसे लोगो की सख्या महज 34 607 थी। ध्यान देन याग्य बात है कि सालाना 5 लाख या उससे ज्यादा कर याग्य आय वाले और कुल आयकर का 65 फीसदी भुगतान करन वाले लोगो की सख्या कुल आबादी मे मात्र 3,245 थी।[9]

कीमतो मे लगातार वद्धि गरीबो को निचोडती जा रही है। जुलाई 1984 मे मूल्य सूचकाक 1960 के आधार पर 598 था, 1947 क आधार पर 761 और अगस्त 1939 के आधार पर 2,623 था।[93] 1985 86, 1986 87 और 1987-88 के दौरान थोक मूल्य सूचकाक म क्रमश 4, 5 5[94] और 9 फीसदी की वृद्धि हुई जबकि उपभोक्ता मूल्य सूचकाक हर बार इससे एक स दो फीसदी ज्यादा रहा। आवास ने भी गरीबो को परशान किए रखा है। लगभग तीन करोड लोग गदी बस्तियों

मे रह रहे हैं। भारत मे लगभग 2 4 करोड मकानो की कमी आकी गई है।[95]

गरीबी की मार सबसे ज्यादा देहाती इलाको मे है जहा 70 फीसदी लोग रहते हैं और समूची देहाती आबादी मे से करीब 40 50 फीसदी निपट गरीब है। अर्थात वे पोषण के लिहाज से न्यूनतम प्रस्तावित खाद्य सामग्री का उपभोग करने मे असमर्थ हैं।[96] ग्रामीण अथवा कृषि मजदूरो की स्थिति भयावह है। श्रमिक मत्रालय से जुडी ससदीय सलाहकार समिति ने निष्कर्ष निकाला है[97] कि करीब सात करोड (यानी कुल आबादी का 10 फीसदी) आके गए कृषि मजदूरो को असिचित क्षेत्रो मे साल मे 60-70 दिन और सिचित क्षेत्रो मे 120 दिन से अधिक रोजगार नही मिलता। निजी ठेकेदार न्यूनतम मजदूरी नही देते। यहा तक कि कुछ सरकारी विभाग भी पूरा भुगतान नही करते और स्थानीय प्रशासन आम तौर पर इन असहाय गरीबो के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अख्तियार नही करता। समिति ने यह भी कहा है कि सरकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमो का ठोस असर नही हुआ है। औरतो को समान काम के लिए मर्दों से कम मजदूरी देने की अफसोसपूर्ण प्रथा बेरोकटोक जारी है। कई राज्यो मे बधुआ मजदूरी का दस्तूर है और 'सलग्न' मजदूरी वास्तव मे बधुआ मजदूरी का ही दूसरा रूप है।

प्रति व्यक्ति आय भी किसी देश के हालात जिंदगी का एक मोटा सूचक हो सकती है। पिछले तीन दशको के दौरान भारत मे प्रति व्यक्ति आय बहुत धीमी गति से बढी है। यह विश्व मे अल्पविकसित देशो की विकास दर के मुकाबले आधी से भी कम है।[98] प्रति व्यक्ति आय के लिहाज से भारत अल्पविकसित देशो के समूह म 66वें स्थान पर है।[99] मूलभूत उपभोग वस्तुओ की प्रति व्यक्ति उपलब्धता मे भी कमी का रुझान दिखता है। चने समेत खाद्य सामग्री की प्रति व्यक्ति उपलब्धता भी 1960-61 मे 468 7 ग्राम[100] से 1984 85 मे 463 3 ग्राम[101] पर ठहराव की स्थिति ही दर्शाती है। दालो का प्रति व्यक्ति उपभोग, जो गरीबो के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है भी इसी दौरान कम होकर आधा रह गया है। यह मात्रा 1961 म 69 ग्राम से घटकर 1985 मे 39 ग्राम ही रह गई है। सूती कपडे का प्रति व्यक्ति उपभोग 1960 61 मे 13 8 मीटर से कम होकर 1984 85 मे 10 6 मीटर ही रह गया है।[102] 1947 मे भारत विश्व के सबसे गरीब देशो मे एक था। आज यह विश्व मे गरीबो की सख्या मे वृद्धि करने वाला अकेला सबसे बडा देश है। 1947 से लेकर प्रत्येक योजना दस्तावेज बयान और शासक दल के घोषणापत्र मे भारत से गरीबी हटाने की बात दुहराई गई। लेकिन गरीबो के लिए निर्धारित नीतिया और कार्यक्रम वाछित परिणाम नही दे सके। प्रधानमत्री ने खुद माना है कि गरीबो को आबटित प्रत्येक छह रु० मे से मात्र एक रुपया ही उन तक पहुचता है।[103] यही वजह है कि व्यापक गरीबी का सवाल आज भी भारत म सबसे ज्यादा अहम है।

(ii) बेरोजगारी

बेरोजगारी की स्थिति भी बहुत निराशाजनक है। प्रत्येक योजना म बरोजगारी कम करने का लक्ष्य रखा गया लकिन हर योजना के बाद बेरोजगारी लगभग दुगुनी होती गई। पहली योजना की समाप्ति पर बरोजगारी 2 9 फीसदी थी। तीसरी योजना की समाप्ति पर यह बढकर 4 5 फीसदी हो गई और माच 1969 क आखिर तक यह आश्चयजनक रूप से बढकर 9 6 फीसदी हो गई। बेरोजगारी के बार म सरकारी विशेषज्ञ समिति ने अपनी 1973 की रिपोट म टिप्पणी की है "आकडो के आधार पर माना जा सकता है कि 1971 म बेरोजगारो की समावित सख्या 1 87 करोड थी। इसम 90 लाख लोग एसे भी हैं जिनके पास किसी प्रकार का रोजगार नही है और 97 लाख व हैं जिन्ह सप्ताह म 14 घट स भी कम काम मिलता है। इन्हें भी बेरोजगारो की श्रेणी मे रखा जाना चाहिए। इनम 1 61 करोड (यानी कुल बेरोजगारो का 86 फीसदी) ग्रामीण क्षेत्रो म और 26 लाख शहरो म हैं।' समूचे देश में बेरोजगार कुल श्रम शक्ति का 10 4 फीसदी है। इनमे 10 9 फीसदी ग्रामीण क्षेत्रो मे और 8 1 फीसदी शहरी क्षेत्रो म है। इसके अतिरिक्त उपरोक्त समिति के अनुसार 2 352 करोड लोग (यानी भारत की श्रम शक्ति का 15 9 फीसदी) सप्ताह म 28 घट से कम काम मिलने के कारण अद्ध बेरोजगार थे। 1979 80 म 5वी योजना की समाप्ति पर भारत म 1 2 करोड लोग बेरोजगार थ। छठी योजना की समाप्ति पर बेरोजगारो की सख्या 1 39 करोड थी। 7वी योजना मे घोषणा की गई कि 3 99 फीसदी सालाना विकास दर के हिसाब से योजना के दौरान 4 036 करोड मानक व्यक्ति वष अतिरिक्त रोजगार जुटाया जाएगा। मगर सरकार की इस क्षेत्र मे उपलब्धि पर एक प्रसिद्ध साप्ताहिक की टिप्पणी देखिए 'औद्योगिक विकास के दावे का एक और भयावह पहलू यह है कि 1983 के बाद औद्योगिक क्षेत्र म कोई रोजगार पैदा नही हुआ। कुल मिलाकर सावजनिक और निजी क्षेत्र क कारखाना म माच 1983 के अत तक 62 6 लाख और माच 1985 के अत तक आखिरी सूचना जो आर्थिक सर्वेक्षण मे दी गई है, 61 8 लाख लोगो को रोजगार मिला हुआ था। इस पर भी आर्थिक सर्वेक्षण मे यह टिप्पणी करने म कोई हिचक महसूस नही की गई कि औद्योगिक नीति का प्रमुख जोर उत्पादन को बढावा देना और रोजगार पैदा करना है। विस्तार म यह नाकामी दूसरे क्षेत्रो म भी झलकती है। कुल मिलाकर सगठित क्षेत्र मे (जिसम सरकारी प्रशासन और प्रतिरक्षा भी शामिल है) जून 1985 और जून 1986 के बीच रोजगार मे मात्र 1 6 फीसदी की ही वृद्धि हुई। दूसरे शब्दो मे, श्रम शक्ति म 2 6 फीसदी की दर से वद्धि होने के कारण सगठित क्षेत्र मे रोजगार का अनुपात वास्तव म घटता जा रहा है।' 1987 के अत तक भारत म पजीकृत बेरोजगारो की सख्या 3 करोड हो गई।[101] अर्थात 1957 स 1987 के बीच बेरोजगारो की सख्या मे 10 गुना वद्धि हुई (1951 मे बेरोजगारो की सख्या मात्र 30 लाख ही थी) जबकि जनसख्या मे इसी दौरान मात्र 2 5 गुना वृद्धि ही हुई है। इन

3 करोड़ पजीकृत बेरोजगारो मे लगभग 30 लाख (हिंदुस्तान टाइम्स, 29 2 88, पृष्ठ 16 के अनुसार) डॉक्टर, इजीनियर और विज्ञान के स्नातक हैं। लेकिन सबसे चिंताजनक बात तो प्राथमिक व माध्यमिक क्षेत्रो म बेरोजगारी के रुझान मे कमी होना है। जनगणना के आकडे बताते है कि प्राथमिक क्षेत्र की सभी नौकरिया मे निरतर कमी आई है। 1961 मे 74 26 फीसदी से घटकर 1981 मे ये 69 33 फीसदी रह गई हैं।[105] यदि फालतू लाग माध्यमिक या ततीय क्षेत्रो मे रोजगार पा लेते तो यह कमी स्वागतयोग्य होती। लेकिन जहा तृतीय (अथवा सेवा) क्षेत्र मे रोजगार मे कुछ वद्धि हुई हैं, वही माध्यमिक क्षेत्र इस मामले मे वस्तुत स्थिर रहा है। हकीकत मे सगठित माध्यमिक क्षेत्र की सभी नौकरिया 1961 की 37 3 फीसदी से घटकर 1987 मे 32 9 फीसदी रह गई हैं।[106] इसकी प्रमुख वजह यह है कि निजी क्षेत्र मे रोजगार के अवसर कम हो गए हैं। जहा सगठित निजी क्षेत्र म 1961 और 1987 के बीच रोजगार मे 1 2 फीसदी कमी हुई है वही इसी दौरान सगठित सरकारी क्षेत्र मे 3 फीसदी की वद्धि हुई।[107] पिछले कुछ वर्षों मे निजी क्षेत्र ने कोई ऐसी परियोजना नही दी है जिसम 500 से ज्यादा लोगो का सीधा रोजगार दिया गया हो। सावजनिक क्षेत्र भी नए रोजगार पैदा करने म अक्षम है। इसम पहले ही जरूरत से ज्यादा कमचारी भरे हैं। इसलिए प्राथमिक और माध्यमिक क्षेत्रो मे रोजगार के नए अवसर न होने की स्थिति मे बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने का बीडा ततीय (सेवा) क्षेत्र के कधे पर है। लेकिन सगठित तृतीय क्षेत्र (सरकारी सेवाए, व्यापार, परिवहन व सचार आदि) मे भी बहुत सारी अनुत्पादक नौकरिया ही है। प्रशासनिक सेवा क्षेत्र पहले ही जरूरत से ज्यादा लोगो से भरा है। इस समय नई सरकारी नौकरियो पर पाबदी लगी है। ऐसी हालत मे नए रोजगार या तो असगठित क्षेत्र मे स्वय रोजगार के जरिए या बडे उद्योगो को लगाकर (जिससे नए उद्योग धधे पनपें) पैदा किए जा सकते है। यह काम किसी भी सूरत मे साल दो साल मे पूरा नही किया जा सकता। योजना आयोग के एक सदस्य ने कहा था कि पूण रोजगार प्राप्ति की बात तो अगले 20 वर्षों तक सोची भी नही जा सकती।[108]

आम भाषा मे बेरोजगारी का मतलब है एसे लागो के लिए काम का पूण अभाव जो कोई नौकरी नही करते पर सरगर्मी से काम की तलाश मे हैं या फिर उन लोगो के लिए काम की कमी जो छिटपुट काम कर रहे पर पूणकालिक रोजगार चाहते हैं। सामाजिक तौर पर बेरोजगारी का मतलब वह अप्रयुक्त मानव श्रम अथवा मानव ससाधनो का वह क्षय है जिस किसी श्रम विभाजन मे इस्तेमाल नही किया जा सका। बेरोजगारी की कई किस्मे हैं—जैसे कि उच्च मजदूरी दर, चक्रीय, घषणात्मक, सरचनात्मक, टेक्नोलाजिकल आदि। और हर प्रकार की बेरोजगारी का अपना कारण और समाधान होता है। बहरहाल बेरोजगारी का आम कारण श्रम की माग और पूर्ति के बीच असतुलन होना है। इसका आम समाधान यह है कि इस असतुलन दूर किया जाए।

(iii) परिसपत्ति और आय वितरण मे असमानताए

परिसपत्ति और आय वितरण मे असमानताओ की स्थिति बहुत ही दुखदायी है। हर योजना मे बाद इन असमानताओ को कम करने की बात दुहराई गई मगर स्थिति और खराब होती गई।

भारतीय अर्थव्यवस्था म परिसपत्ति का वितरण बेहद असमान है। मसलन 1961 और 1971 के अखिल भारतीय ऋण एव निवेश सर्वेक्षणो के अनुसार इन दोनो वर्षों म सबसे गरीब 10 फीसदी लोगो के पास परिसपत्ति का महज 0 1 फीसदी हिस्सा था। यहाँ तक कि 1961 मे सबसे गरीब 30 फीसदी लोगो के पास परिसपत्ति का 2 5 फीसदी हिस्सा था जो 1971 म मात्र 2 फीसदी ही रह गया। इसके विपरीत सबसे अमीर 10 फीसदी लोगो के पास 1961 और 1971 मे क्रमश 51 4 फीसदी और 51 फीसदी हिस्सा था। 1961 म सबसे अमीर 30 फीसदी के पास 79 फीसदी और 1971 म 81 9 फीसदी हिस्सा था। गरीब लोगो की अधिकाश परिसपत्ति झोपडियाँ, घरेलू समान और कुछ पशु थ जिनसे होन वाली आय नही के बराबर थी।

जहाँ तक जमीन का प्रश्न है, मिलकियती अथवा बटाई पर ली गई जोतो के आँकडे बताते है कि 1976 77 मे 2 हेक्टेयर से भी कम की जोत वाले छोट व सीमात किसान 70 फीसदी से भी ज्यादा थे। पर व कुल जमीन के मात्र 24 फीसदी हिस्से पर ही काम करते थे। इसके विपरीत 2 स 10 हेक्टेयर की जोत वाले किसान कुल जमीन के 50 फीसदी हिस्से पर काम करत थे। 10 हेक्टेयर से ज्यादा की जोत वाले सबसे अमीर 3 फीसदी लोग 26 फीसदी जमीन के मालिक थ।

राष्ट्रीय प्रायोगिक आर्थिक अनुसधान परिषद ने अनुमान लगाया है कि शहरी क्षेत्रो मे 57 फीसदी निर्मित सपत्ति सर्वोच्च 10 फीसदी सपत्ति मालिको के कब्जे मे है जबकि नीचे के 10 फीसदी परिवारो के पास इस सपत्ति का मात्र एक फीसदी भाग है। कपनी शेयरो की मिलकियत के मामले म महालनाबिस समिति न अनुमान लगाया कि 1964 के आसपास शेयरो क रूप मे परिसपत्ति का आधे से ज्यादा भाग लाभाश कमाने वाले सर्वोच्च एक फीसदी परिवारो के पास था। उसके बाद स्थिति मे और बिगाड ही हुआ होगा जसा कि बडे पैमान पर होने वाली करो की चोरी और भारी मात्रा म काले धन के देश के बाहर जान से स्पष्ट होता है।

समय समय पर किए जाने वाले जाच सर्वेक्षणो से स्पष्ट होता है कि आय का वितरण भी बेहद असमान है। लिडाल के अनुमान के अनुसार 1955 56 मे ऊपर के 10 फीसदी लोग राष्ट्रीय आय का 34 फीसदी हडप जाते थे जबकि नीचे के 25 फीसदी लोगो के पल्ले 9 6 फीसदी हिस्सा ही आता था। आयगर और मुखर्जी के अनुमान के अनुसार 1956 57 मे ऊपर के 10 फीसदी लोग राष्ट्रीय आय का 25 फीसदी हिस्सा ले जाते थे जबकि नीचे के 24 फीसदी लोगो को मात्र 8 5 फीसदी

ही मिल रहा था। 1950 वाले दशक के लिए रिजर्व बैंक के अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रो मे (1953- 54 मे)ऊपर के 5 फीसदी लोगो को राष्ट्रीय आय का 17 फीसदी और निम्न 20 फीसदी को 9 फीसदी हिस्सा मिल रहा था। इन अनुमानो से यह भी पता चलता है कि 1956-57 मे शहरी क्षेत्रो मे ऊपर के 5 फीसदी लोगो को राष्ट्रीय आय का 25 फीसदी हिस्सा मिला जबकि नीचे के 20 फीसदी मात्र 7 फीसदी पर गुजारा करते थे। करीब 20 वर्ष बाद राष्ट्रीय प्रायोगिक आर्थिक अनुसधान परिषद का 1970 71 के लिए अनुमान था कि ऊपर के 30 फीसदी लोगो को राष्ट्रीय आय का 53 4 फीसदी हिस्सा मिला जबकि नीचे के 30 फीसदी लोग मात्र 11 3 फीसदी पर ही गुजर कर रहे थे।

बढती हुई असमानता से गरीबी दूर होने का प्रश्न ही नही उठता। सापेक्ष गरीबी को दूर किए बिना निरपक्ष गरीबी कैसे दूर की जा सकती है।

9 काला धन

भारत का नियोजित आर्थिक विकास जहाँ घोषित लक्ष्यो और उपलब्धियो के बीच अतर से सदा पीडित रहा, वही सरकार द्वारा काले धन की अथव्यवस्था को हर तरीके से खत्म करन की बार-बार घोषणाओ के बावजूद उसमे तेजी से वृद्धि हुई है।

काली अथव्यवस्था से अभिप्राय बिना लेखे-जोखे वाले ऐसे धन से है जो गैर-कानूनी गतिविधियो से जुटाया जाता है। इसे समातर अथव्यवस्था भी कहत हैं। इसे 'दो नम्बर वाले खातो' के व्यवसाय मे इस्तेमाल किया जाता है जैसे कि साने, हीरे-जवाहरात की वस्तुओ की तस्करी, विदेशी मुद्रा का गैरकानूनी लेन दन, जमाखोरी, सट्टेबाजी, अनुचित लाभ और काला बाजारी के लिए बेशकीमती वस्तुओ की खरीदारी गुप्त दलाली, रिश्वतखोरी, मुकदमेबाजी आदि मे पैसा लगाना, कर मुक्त सरकारी प्रतिभूतिया, आभूषण आदि जैसी चल व अचल सपत्ति की खरीदारी, बनामी और झूठे नामो से देशी विदेशी बको मे जमा गुप्त व झूठे नामो स दान देना वगरह-वगैरह। सबसे बडी बात यह कि यह धन चुनाव मे खच होता है और राजनैतिक पार्टियो को चदे के तौर पर भी दिया जाता है।

काले धन का अदाजा लगाने के लिए पहले पहल प्रत्यक्ष कर जाँच समिति ने जिसे वाचू समिति के नाम से जाना जाता है 1971 मे प्रयत्न किया था। उसका अनुमान था कि 1968 69 म काले धन की मात्रा 7,000 करोड रु० या सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 6 5 फीसदी थी। 1980 वाले दशक के शुरू म किए गए एक अध्ययन[109] के अनुसार 1978-79 मे देश मे 46,866 कराड रु० का काला धन था जो सकल राष्ट्रीय उत्पाद के सरकारी आकडो का 48 8 फीसदी था। हाल ही म राष्ट्रीय सावजनिक वित्त नीति सस्थान ने अनुमान लगाया है कि 1984 85 म 36,786 करोड रु० है। यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 21 फीसदी है। अब घट मे 4 करोड रु० के बराबर काला धन पनपता है। केंद्रीय उर्जामत्री

के अनुसार यह रकम बढ़कर 70 000 करोड रु० हो गई है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद आर्थिक गतिविधि के लिहाज से तमाम जनसख्या म बटता है, तो काला धन एसा धधा करने वाले कुछ हजार लोगो तक ही सीमित रहता है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद का करीब 21 फीसदी कुछ ही हाथो म सीमित है। इस तथ्य से पता चलता है कि देश मे दौलत आय का किस हद तक अनुचित वितरण है। सभी प्रमुख राजनैतिक दल प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इससे जुडे हैं।[110] आज विधायिका की एक भी सीट काले धन के बिना नही जीती जा सकती। जरा भर ईमानदारी रखने वाला कोई सासद या विधायक यह नही कह सकता कि उसके सारे चुनाव खर्चे कानून के अनुसार थे। स्पष्टतया यह अत्यधिक चुनाव खर्चे काले धन स पूरे होते है। काले धन के प्रश्न पर सत्ताधारी काग्रेस और प्रमुख विपक्षी दलो मे झगडा इस बात पर है कि इसका बडा हिस्सा सत्ताधारी दल मार ले जाता है जबकि दूसरो के हिस्से कम ही ही रकम आती है।

काले धन क प्रचलन न भारतीय अथव्यवस्था पर कई तरीको से बुरा असर डाला है। पहली बात तो यह कि राष्ट्रीय ससाधनो का गलत इस्तेमाल हुआ है। उन्हें या तो अनुत्पादक गतिविधियो मे लगाया जाता है या दिखावे के कामो पर फिजूलखर्ची की जाती है या भारत स बाहर ले जाकर विदेशी बैंको मे जमा करवा दिया जाता है। पैसे का यह वार्षिक पलायन लगभग 1 3 अरब डॉलर है।[111] दूसरा असर यह हुआ *कि आय के असमान वितरण मे बढोतरी हुई है। तीसरे, सास्कृतिक मूल्यो मे ह्रास* हुआ है जिससे ईमानदारी और कडी मेहनत का कोई मूल्य नही रहा तथा राजनैतिक प्रक्रिया समेत हर जगह धन शक्ति और भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया है।

काले धन को ज म देने वाले मुख्य कारण य हैं आवश्यक वस्तुओ की कमी और चोर बाजारी में उनकी बिक्री, सीमित ससाधनो को चलाने के लिए कट्रोल, परमिटो लाइसेंसो कोटा प्रणाली आदि का लागू किया जाना, चोरी छिपे लेन-देन म इन परमिटो, कोटा और लाइसेंसो की ऊँची कीमतें तथा इन्ह पाने के लिए रिश्वत और भ्रष्टाचार कर चोरी निम्न सास्कृतिक स्तर, तथा निरकुश राजनैतिक प्रणाली।

सरकार काले धन को दबाने की जितनी घोषणाएँ करती है उतनी ही इसमे वृद्धि होती जाती है। क्योकि जब तक इसके प्रमुख कारण बने रहगे इसका अत नही हो सकता। काली अथव्यवस्था की समस्या सरचनात्मक है। इसलिए इसके खात्मे के लिए एकीकृत राजनैतिक आर्थिक व सास्कृतिक प्रयासो की जरूरत है। काला धन खत्म करने का एकमात्र रास्ता आर्थिक प्रक्रिया पर लोगो का नियत्रण कायम करना है।

10 भारतीय जनता पर लादी गई भारी हानि

इस सर्वेक्षण मे विश्लेषित विभिन्न आर्थिक तत्वो को जोडने पर भारतीय अथव्यवस्था की निराशाजनक तस्वीर उभरती है। इसके कामकाज को आय वृद्धि दर के

पश्चिमी उदारवादी पैमाने से नापा जाए या गरीबी उन्मूलन अथवा आय असमानता घटाने के समाजवादी मापमड से, किसी भी हालत मे इसे दुरुस्त नही ठहराया जा सकता। क्या भारत किसी दूसरे ढग स वेहतर परिणाम प्राप्त कर सकता था? दुनिया मे तुलना करने पर पता चलता है कि चीन, ब्राजील, दक्षिण कोरिया, ताइवान आदि जैसे तीसरी दुनिया के अलग-अलग व्यवस्था वाले अनक दशा ने न सिर्फ ज्यादा विकास दर वल्कि गरीवी उन्मूलन और वरोजगारी मिटाने मे भी अच्छे परिणाम पाए है।

भारतीय अथव्यवस्था का प्रमुख दोष यह है कि पिछले 40 वर्षों म यह अपना एक भी घोषित उद्देश्य और एक भी नियोजित लक्ष्य पाने मे नाकाम रही है। इससे भारतीय लोगो को भारी नुकसान उठाना पडा है। यह इन तीन कारणा स स्पष्ट है (i) नियोजित लक्ष्यो क अधूरा रहन स भारतीय अथव्यवस्था को हुई हानि, (ii) पूजी/उत्पाद के अनुपात म हुई वद्धि से भारतीय अथ यवस्था को हुई हानि, तथा (iii) गैर-उत्पादक खच मे वद्धि से भारतीय अथ यवस्था को हुई हानि।

(i) नियोजित लक्ष्यों के अधूरा रहने से हुई हानि

इसके बारे मे कोई सरकारी अनुमान उपलब्ध नही है। लेकिन कुछ सरकारी और गैर सरकारी सकेता के आधार पर हम इस प्रश्न को मोटे ढ़ग से सुलझा सकते हैं। पहला सरकारी सकेत जो हाल ही म प्रधानमत्री ने दिया, उसके मुताबिक गरीबो के लिए आवटित प्रत्यक छह रुपए म से उन तक मात्र एक रुपया ही पहुँचा है। किसी भी सरकारी या गैर सरकारी एजेंसी अथवा विशेषज्ञ ने चूकि भारतीय योजनाकारी के कामकाज पर इस महत्वपूण टिप्पणी का प्रतिवाद नही किया है इसलिए हम इसे 1947 उपरात भारतीय योजना की फिजूलखर्ची (जा भ्रष्टाचार प्रश्रय, अकुशलता आदि के जरिए होती है) को नापने की कसौटी बनाते हैं। इस आधार पर हमारा मोटा अनुमान है कि 1951 से 1988 के बीच जो 4,00,000 करोड रु० भारतीय नियोजन पर खच किए गए,[112] उनमे से 66,666 करोड रु० (यानी भारतीय नियोजन पर खच कुल राशि का 1/6 भाग) ही उत्पादक अथवा सामाजिक तौर पर फायदे-मद कार्यों पर खच हुए जबकि 3,33,334 करोड रु० (यानी भारतीय नियोजन की कुल राशि का 5/6 भाग) सामाजिक तौर पर व्यथ गए।

नियोजित लक्ष्यो के अधूरा रहने से 1947 उपरात भारतीय अथव्यवस्था को हुई हानि के बारे मे दूसरा गैर सरकारी सकेत करीब पाच साल पहले प्रकाशित एक अध्ययन[113] से मिलता है। इसस पता चलता है कि भारत की एक पचवर्षीय योजना को पूरा होने मे सात वष लगते हैं। योजना लक्ष्या के समय पर पूरा न होन से उत्पादन मे भारी हानि तो हुई ही, राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आया की वद्धि पर भी अकुश लगा। इसके अनुसार अगर नियोजित लक्ष्य समय रहते पूरे होत तो राष्ट्रीय आय मे 1,20,082 करोड रु० की वृद्धि होती जिससे 1980 81 मे प्रति व्यक्ति आय 1,537 रु० के बजाय दुगुनी यानी 3,398 रु० होती।

(ii) पूंजी/उत्पाद के अनुपात मे वृद्धि से हुई हानि

भारतीय अथव्यवस्था मे पूजी/उत्पाद के अनुपात के बारे मे अनेक अनुमान उपलब्ध हैं। लगभग सभी सहमत ह कि निवेश की उत्पादकता लगातार घटी है। वी० के० आर० वी० राव के अनुमान के अनुसार[114] 1960-61की कीमतो पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुरूप शुद्ध निवश मे परिवतन से पूजी/उत्पाद के अनुपात की दीघकालिक प्रवत्ति बताती है कि वह 1950 के दशक मे 2 39 से बढकर '70 के दशक मे 4 63 पर पहुच गया। उनके अनुमान आगे बताते है कि औसत पूजी/उत्पाद का अनुपात भी '50 के दशक के 2 7 से बढकर '60 के दशक मे 2 9 और '70 के दशक मे 3 33 हो गया। आर० एम० सुदरम के अनुमान[115] भी शुद्ध पूजी/उत्पाद के अनुपात, शुद्ध अचल पूजी/उत्पाद के अनुपात और औसत पूजी/उत्पाद के अनुपात मे वृद्धि की तरफ इशारा करते है। इससे पता चलता है कि तकनीकी तरक्की अपेक्षतया कम हुई है। सुखमय चक्रवर्ती ने भारतीय अथव्यवस्था म पूजी/उत्पाद के मौजूदा अनुपात को 5 96 माना है।[116] एस०आर०हाशमी का अनुमान है कि 1950 51 से 1973 74 के बीच पूजी/उत्पाद का अनुपात 5 36 और 1974 75 स 1983 84 के बीच 5 44 था।[117] 1950 51 से 1983 84 तक के काल के लिए उन्होने इसे 5 61 माना। यह सरकारी और निजी क्षेत्र को मिलाकर प्राप्त की गई औसत थी। अकेले सरकारी क्षेत्र के लिए उन्होने यह आकडा 1960 61 और 1983 84 के बीच 7 00 तथा 1974 75 और 1983 84 के बीच 5 92 बताया।

ये सार अनुमान बताते है कि पिछले 40 वर्षों म पूजी/उत्पाद का अनुपात 3 से बढकर 6 हो गया है यानी इसमे दुगुनी वद्धि हुई है। इसका मतलब है कि 1951 मे तीन रु० लगाकर एक रु० का उत्पादन हुआ करता था जबकि 1980 के दशक मे 6 रु० लगाकर एक रु० का उत्पादन हो रहा है। जाहिर है अगर पूजी/उत्पाद का अनुपात दुगुना नही हाता तो भारत म आथिक विकास का मौजूदा स्तर पिछले 40 वर्षों के दौरान देश म किए गए कुल निवेश स भी आधी रकम मे पूरा हो सकता था। इस तरह भारतीय लोगो द्वारा उठाई गई कुल हानि अरबा रु० मे बठती है। चूकि पिछले तीन दशको (1951 81) म भारतीय अथ यवस्था का उत्पादन 2 8 गुना बढ़ा है हमारा मोटा अनुमान है कि इस दौरान पूजी/उत्पाद का अनुपात दुगुना हो जाने के मद्देनजर बढे हुए उत्पादन पर खच हुई अतिरिक्त पूजी भारत की मौजूदा राष्ट्रीय आय(1986 87 मे 2,71 500 करोड रु०)के दुगुने से हरगिज कम नही हो सकती। यानी इस दौरान 5,43 000 करोड रु० का फालतू खच हुआ है।

(iii) गैर-उत्पादक खच मे वृद्धि से हुई हानि

यह मामला पहले ही गभीर स्थिति धारण कर चुका है। केंद्र सरकार का खच 1950 51 मे 500 करोड स 100 गुना बढकर 1988 89 म 52,640 करोड रु० हो गया है जबकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद म सिफ 2 8 गुना ही बढ़ोतरी हुई है।

इस खच में वृद्धि का प्रमुख कारण गैर विकास खर्च या गैर योजना खच म वद्धि होना है। यह अब कुल खच का करीब 90 फीसदी है। गैर विकास खच का 72 फीसदी हिस्सा प्रतिरक्षा, ब्याज भुगतान और अनुदानो की मदो म जाता है।[118] 1948 और 1988 के बीच प्रतिरक्षा खच ही 84 गुना बढ गया है। अनुचित सैन्य खच का मतलब है या तो दूसरो को दबाकर रखना या जनता मे बढती बेचैनी को दबाना। सेना पर ज्यादा खच का मतलब है विकास कार्यो पर खच म कमी। ब्याज भुगतान 1950 51 मे शून्य के मुकाबले 1988 89 मे बढकर 14,000 करोड रु० हो गया है जबकि केंद्र और राज्यो द्वारा अनुदान पर किया जाने वाला खच 1950 51 मे 0 4 अरब रु० से बढकर 1960 61 मे 0 9 अरब, 70 71 म 3 4 अरब और 82 83 मे 38 6 अरब रु० हो गया है।[119]

केंद्रीय बजट का आम ढर्रा यह है कि जहा केंद्र सरकार के राजस्व मे सालाना औसतन 10 फीसदी की वद्धि होती है, वही इसका खच हर साल 15 फीसदी बढ जाता है। घाटे की अथव्यवस्था पहले ही सकल राष्ट्रीय उत्पाद की 2 फीसदी सुरक्षित सीमा को पार कर चुकी है। 1987 88 मे केंद्र और राज्या का कुल मिलाकर बजट घाटा 10,132 करोड रु० आका जाता है जो कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 3 1 फीसदी हो सकता है।[120] नौवें वित्त आयोग के मुताबिक[121] केंद्र और राज्यो का कुल मिलाकर सावजनिक ऋण 1974 75 के अत मे 29 933 करोड रु० स बढकर 1986 87 के अत मे 1,60,834 करोड रु० यानी सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 61 8 फीसदी हो गया है। अनुमान है कि 31 माच 1988 तक यह 2,10,377 करोड रु० तक पहुच गया है।

गर विकास खच के अतिरिक्त बर्बादी, अकुशलता और पसे का दुरुपयोग भी भारतीय अथव्यवस्था को खोखला कर रहे हैं। भारतीय अथव्यवस्था मे बर्बादी का इजहार इस बात से होता है कि माच 1987 के अत तक सारे राज्य बिजली बोर्डों का कुल घाटा[122] 2748 40 करोड रु० था जबकि माच 1986 के अत तक यह 2161 50 करोड रु० और माच 1985 के अत तक 1647 8 करोड रु० था। यह भारी घाटा बडे पैमाने पर होन वाली बिजली की चोरी के कारण है। ऊर्जामंत्री के अनुसार भारत म बिजली की 50 फीसदी चोरी होती है।[123] यहा तक अकुशलता का ताल्लुक है, इस बारे मे लोक लेखा समिति द्वारा ससद को प्रस्तुत रिपोट[124] म अनुमान लगाया गया कि 1951 के बाद के तीन दशको मे सिंचाई परियोजनाओ पर लगभग 150 अरब रु० खच करके 3 9 करोड हेक्टयर जमीन के लिए सिंचाई सुविधाए जुट पाईं जबकि लक्ष्य छह करोड हेक्टेयर के लिए था। इस 2 1 करोड हेक्टेयर की कमी को पूरा करन के लिए अनुमान लगाया जाता है कि वतमान कीमतो पर 140 अरब रु० की और जरूरत होगी। यहा तक बाढ नियत्रण का सबध है, सिंचाई अधिकारियो का अनुमान है कि बाढ की सभावना वाले कुल 4 करोड हेक्टेयर इलाके म से 80 फीसदी में सुरक्षा प्रबध किए जा सकते हैं

लेकिन अब तक मात्र 1 2 करोड हैक्टेयर इलाका ही सुरक्षित किया जा सका है। दिवगत राजकृष्ण के अनुसार[1°5] 1951 से 1980 तक के 30 वर्षों क दौरान जो 192 बडी सिचाई परियोजनाएँ शुरू की गई उनमे से सिर्फ 42 ही अब तक पूरी की जा सकी हैं। इतने लबे काल से अधूरी पडी योजनाओ पर खर्च होने वाली राशि दुगुनी हो गई है। 66 परियोजनाओ म अतिरिक्त लागत पहले ही 50 अरब रु० बढ़ गई है। 150 बडी और 3 000 छोटी परियोजनाओ को पूरा होने मे 2 स 25 वर्ष तक की देरी हो चुकी है। दो बडी स्टील कारखाना विस्तार परियोजनाओ (बोकारो और भिलाई) की लक्ष्य से 4 5 साल बाद पूरा होने की उम्मीद है। इस पर अति रिक्त लागत 12 अरब रु० से ज्यादा होगी। अति महत्व क एटमी ऊर्जा क्षेत्र म परियोजनाओ को पूरा होन म 2 से 7 वर्ष की देरी हो रही है और इन पर अतिरिक्त लागत करीब 3 अरब रु० बैठ रही है जो मूल अनुमानित लागत की दुगुनी है। प्रमुख कोयला परियोजनाए एक से चार साल पीछे और उत्तरी क्षेत्र म 5 प्रमुख ताप बिजली परियोजनाए 7 से 45 महीने पीछे चल रही हैं।

इसी प्रकार कई क्षेत्रो (जैसे सीमेंट, कागज, अलौह धातुए, रासायनिक खाद, इजीनियरिंग उद्योग और तेल शोधन आदि) म प्रमुख परियोजनाए देरी और लागत वद्धि से ग्रस्त हैं। लागतो म वद्धि और इससे जुडे दूसरे नुकसान 1970 के दशक म 10 अरब रु० के बराबर आके गए। यहा तक पैसे के दुरुपयोग का प्रश्न है, कर्ज मेले इसका जीता जागता उदाहरण हैं। केंद्रीय सतर्कता आयोग की 1987 की रिपोर्ट मे सबधित बैंको को अधाधुध उधार के लिए आडे हाथो लिया गया है। इनमे सिर्फ सत्ताधारी दल का प्रभाव बढाने की खातिर 2,800 करोड रु० बाट दिए गए। एक गैरसरकारी अनुमान के मुताबिक प्रत्येक वर्ष जनता के लगभग 20 000 करोड रु० दुरुपयोग म फुक जाते हैं।[1°6]

11 आर्थिक परिणाम

मानवीय और तकनीकी ससाधनो के उत्पादक इस्तेमाल म असफलता का पहला परिणाम तो भारतीय अर्थव्यवस्था के दिवालिएपन मे निकला है। इसके कारण सरकार की देनदारिया इसकी परिसपत्ति से 40 000 करोड रु० ज्यादा है।[127] दूसरे, इससे विश्व मे भारत का आर्थिक रुतबा गिरा है। 1951 मे विश्व उत्पादन मे भारत का योगदान दो फीसदी था। वह 1985 मे घटकर 1 42 फीसदी रह गया है।[1 8] 1951 म विश्व के औद्योगिक उत्पादन मे भारत का हिस्सा 1 2 फीसदी था। वह 1985 मे घटकर 0 5 फीसदी रह गया।[129] 1951 म विश्व के कृषि उत्पादन मे भारत का हिस्सा 11 फीसदी था। वह 1985 मे घटकर 9 फीसदी रह गया।[130] इसी प्रकार इस दौरान विश्व व्यापार मे भारत का हिस्सा 2 4 फीसदी से घटकर 0 5 फीसदी रह गया।[131] विश्व के औद्योगिक देशो म तब भारत का 10वा स्थान था। अब वह खिसककर 12वा हो गया है।[132] शिक्षा के क्षेत्र मे भारत की 36

फीसदी साक्षरता दर तजानिया जैसे अफ्रीकी देशो से भी कही पीछे है।[133] तीसरे, इससे ऐसा वातावरण बना है जिसमे भ्रष्टाचार रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन गया है मानदड और मूल्य कही छूट गए है, कानून कायदो का उल्लघन आम हो गया है और अपराध की जड़ें गहरी होती जा रही है। चौथ, इसका परिणाम भारत की लगभग 40 फीसदी आबादी के कुपोषण मे निकला है। प्रत्यक नागरिक को मुश्किल से जिंदा रहने लायक 1800 केलारी प्रतिदिन ऊर्जा के बराबर खाद्य सामग्री मिलती है। इसी वजह से प्रतिवष लगभग 20 लाख लोग विभिन्न बीमारियो के शिकार होकर दम तोड देते हैं।

सदभ

1 और 2 इकानामिक ऐंड पालिटिकल वीक्ली, 28 9 85, पृ० 1651

3 'स्टेटिस्टिकल आउटलाइस', टाटा सर्विसेज बबई

4 फ्रेश पॅर्स्पेक्टिव्ज आन इडिया ऐंड पाकिस्तान', बुक ट्रेडस लाहौर, 1987, पृ० 87

5 से 10 एम० एस० आन्शिपिया, फाइनाशियल एक्सप्रस, 25 1 88, प० 5

11 से 15 वी० एम० दाडेकर इ० पा० वीक्ली, 9 1 88, पृ० 49

16 से 19 एम० जे० पटल, इ० पो० वीक्ली 28 9 85, पृ० 1652

20 हिंदुस्तान टाइम्स सडे मैगजीन, 31 1 88 प० 2

21 स 22 इडियन एक्सप्रेस 12 10 88, पृ० 8

23 ट्रिब्यून, 14 11 84, पृ० 4

24 स 25 हिंदुस्तान टाइम्स, 16 11 84 पृ० 9

26 हिंदुस्तान टाइम्स, 8 4 87

27 टाइम्स ऑफ इडिया, 24 10 84, प० 9

28 स 29 इकानामिक टाइम्स, 4 5 87, पृ० 5

30 इकॉनॉमिक टाइम्स, 1 4 88, पृ० 5

31 टाइम्स आफ इडिया, 9 11 88, पृ० 1

32 इकानामिक टाइम्स, 4 5 87, प० 5

33 टाइम्स आफ इडिया (जयपुर), 8 6 87, प० 5

34 इ० पो० वीकली 28 9 85, प० 1652

35 टाइम्स आफ इडिया, 22 7 87, प० 6

36 फाइनाशियल एक्सप्रेस, 28 1 88, प० 5

37 इकॉनामिक सर्वे 1982 83, वित्त मत्रालय, नई दिल्ली

38 से 41 इकानामिक टाइम्स, 10 9 88, पृ० 1

42 सेंटर फार मानिटरिंग इडियन इकानामी, अगस्त 1981

43 से 44 पट्रियट, 27 2 28, प० 9

45 पेट्रियट 3 2 88, पृ० 2
46 पेट्रियट, 5 1 87, पृ० 9
47 स 48 मेनस्ट्रीम, 23 4 88, पृ० 13
49 टाइम्स ऑफ इडिया, 20 8 83
50 से 53 'स्टेटिस्टिकल आउटलाइन, 1986 87', टाटा सर्विसेज बबई
54 हिंदुस्तान टाइम्स, 28 11 88, पृ० 11
55 'फ्रेश पर्सपेक्टिव्ज ', बुक ट्रेडर्स लाहौर, पृ० 92
56 स 58 सडे ट्रिब्यून, 6 9 87, प० VIII
59 से 60 पट्रियट, 10 3 88, प० 5
61 से 64 इडिया टुडे, 15 1 85
65 वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपाट, 1984
66 द पोलिटिकल इकॉनॉमी ऑफ डेवलपमट', ओयूपी, इग्लड 1984, पृ० 3
67 से 68 ट्रिब्यून 21 12 88, पृ० 4
69 राष्ट्रीय आय के अनुमान, केंद्रीय सांख्यिकी सगठन, फरवरी 1964
70 टाइम्स आफ इडिया (जयपुर), 8 6 87, प० 5
71 'द इकॉनॉमी आफ इडिया', वी० एन० बालसुब्रमण्यम, वीडनफील्ड ऐंड निकोलसन, लदन 1981, पृ० 162
72 पेट्रियट 31 1 85, पृ० 2
73 मेनस्ट्रीम, 25 6 88, प० 15
74 पट्रियट, 31 1 85, पृ० 2
75 *इकानामिक टाइम्स 4 5 88 पृ० 5*
76 टाइम्स ऑफ इडिया, 20 10 88 पृ० 6
77 ट्रिब्यून, 10 9 88, प०4
78 मुद्रा एव वित्त सबधी रिजव बैंक की रिपोर्ट तथा इकॉनामिक सर्वे 1986 87
79 ट्रिब्यून, 10 9 88, पृ० 4
80 टाइम्स की 'सैंटर्डे टाइम्स', 10 12 88, पृ० 2
81 इडियन एक्सप्रेस, 9 3 88, पृ०8
82 *सटर्डे टाइम्स, 10 12 88, पृ० 2*
83 इडियन एक्सप्रेस, 9 3 88, पृ० 8
84 से 85 हिंदुस्तान टाइम्स 5 11 88 प० 13
86 रिजव बैंक की रिपोर्ट तथा इकानामिक सर्वे 1986 87
87 स्टेटसमैन, 1 8 87, प० 10
88 हिंदुस्तान टाइम्स, 26 4 88, पृ० 11
89 से 90 'टुवड स सोशल रेवोल्यूशन', वीपीएच दिल्ली 1984 प० 79
91 से 92 अखिल भारतीय कर आकडे 1979 80, आयकर विभाग

93 इकॉनॉमिक टाइम्स, 29 9 84, प० 1
94 फाइनांशियल एक्सप्रेस, 10 6 87, प० 5
95 पेट्रियट, 10 10 87, पृ० 2
96 'द इकॉनॉमी ऑफ इडिया , बालसुब्रमण्यम, प० 3
97 इडियन एक्सप्रेस, 23 4 88, प० 8
98 से 99 वही, प० 10 और 3
100 से 102 'स्टटिस्टिकल आउटलाइस', टाटा सर्विसेज, पृ० 12
103 हिंदुस्तान टाइम्स, 17 11 88, प० 11
104 टाइम्स ऑफ इडिया, 22 3 88, प० 5
105 से 108 वही, 16 12 88, पृ० 5, खड एक
109 इ० पो० वीकली 16 1 82
110 एक अनुमान के अनुसार 1980 के लोकसभा चुनावो म 170 करोड रु० का काला धन खच हुआ—ट्रिब्यून, 17 11 88, पृ० 4
111 फाइनांशियल एक्सप्रेस, 31 12 87, पृ० 5
112 विभिन सरकारी दस्तावेजो के आधार पर सकलित
113 एस०के० तुलसी, 'प्लान्स ऐंड पर्फारमस', आर्थिक एव वैज्ञानिक शोध सस्थान नई दिल्ली
114 इ० पा० वीक्ली, 31 5 80, पृ० 965-77
115 'सेविंग्स इनवस्टमेट ऐंड इकॉनामिक ग्रोथ', लेख न० 165, सेंटर फॉर डेवलपमेट स्टडीज, त्रिवेंद्रम, माच 1983
116 *प्रधानमत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष ने भारतीय नियोजन पर* 1987 म प्रकाशित अपनी पुस्तक म आकडे दिए हैं
117 योजना आयोग की नियोजन समिति द्वारा लिखा लेख जो 8वें विश्व आर्थिक सम्मेलन (दिसबर 1986) म रखा गया
118 टाइम्स आफ इडिया, 7 12 88, पृ० 5
119 प्रणब बद्ध न 'द पालिटिकल इकानॉमी आफ डेवलपमेंट इन इडिया', ओयूपी लदन, 1984, पृ० 62
120 स 121 टाइम्स ऑफ इडिया, 4 9 88, प० 7
122 पेट्रियट, 15 3 88, पृ० 5
123 पेट्रियट, 28 2 88, प० 5
124 प्रणव बद्धन, वही, पृ० 12-13
125 'स्टगनेंट परामीटस , समिनार, जनवरी 84, पृ० 65
126 इडिया टुडे, 15 3 1987
127 बजट 1988 89, परिसपत्ति एव देनदारियाँ
128 से 131 इकॉनामिक टाइम्स, 23 3 87, पृ० 5
132 वल्ड डेवलमेंट रिपोट', टाइम्स आफ इडिया, 22 7 87, पृ० 5
133 पेट्रियट, 5 12 86, पृ० 9

अध्याय पाच

भारतीय सस्कृति

1 प्रचलित जीवन पद्धति

भारतीय सस्कृति से यहाँ अभिप्राय 1947 उपरात भारतीय राष्ट्रीय जीवन मे प्रचलित आध्यात्मिक, नैतिक और सौंदयपरक मूल्यो की प्रक्रिया से है। यानी यह सस्कृति 1947 उपरात भारतीय लोगो की प्रचलित जीवन पद्धति को अभिव्यक्त करती है। हरेक जीवन पद्धति मानव आचरण व व्यवहार के सभी सामाजिक मान दडो—यानी विचारो, आस्थाओ, मूल्यो, भावनाओ, ढगो, रुचियो, आदतो, रीति रिवाजो, परपराओ भाषा, वर्ण, साहित्य, कला, विज्ञान आदि का योगफल होती है। इनसे प्रत्येक व्यक्ति का दूसर व्यक्तियो, नारी, परिवार, विवाह, धम, विभिन्न विचारधाराआ, राज्य और दूसरी प्राकृतिक वस्तुआ के प्रति रुख का इजहार होता है। यह बहुत ही विस्तृत अवधारणा है। विभिन्न प्रकार की मानवीय गतिविधियो की सटीक अभिव्यक्ति जितनी इस एक शब्द स होती है उतनी किसी ओर से नही। इसलिए सस्कृति सामाजिक विकास मे बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह भूमिका सकारात्मक भी होती है और नकारात्मक भी। सकारात्मक भूमिका वचारिक और भौतिक विकास को आग बढाती है जबकि नकारात्मक भूमिका उसमे बाधा डालती है। यह भूमिका अथ यवस्था और राजनीति से अभिन्न तौर पर जुडी होती है, इसलिए इनके साथ करीबी तौर पर जोडकर ही इसका उचित अध्ययन किया जा सकता है।

2 भारतीय राज्य के सास्कृतिक सिद्धात और इसकी सरकार की सास्कृतिक शली की अभिव्यक्ति

(क) 1947 उपरात प्रचलित भारतीय सस्कृति भारत के राष्ट्र राज्य क सास्कृतिक सिद्धात की अभियक्ति है (ठीक उसी प्रकार जसे कबीलाई सस्कृति को कबीलाई राज्य और शाही सस्कृति को धार्मिक सह सैनिक राज्य की अभिव्यक्ति माना जाता है)। खास तौर पर यह शासक दल या उसकी सरकार की सास्कृतिक शैली की प्रतीक है (ठीक उसी तरह जस कबीलाई सस्कृति को विशेषकर कबीलाई शासक परिपद और शाही सस्कृति को शासक धार्मिक सह सनिक गुट की सास्कृतिक शैली का प्रतीक माना जाता है इसी तरह आदिम कुल सस्कृति कुल के सास्कृतिक सिद्धात को अभिव्यक्त करते हुए कुल के मुखिया की सास्कृतिक शली की प्रतीक थी)।

(ख) भारतीय राज्य कही भी सस्कृति की अपनी निश्चित अवधारणा प्रस्तुत

नही करता । यह अवधारणा यहां-वहा बिखरे रूप मे ही मिलती है । संविधान मे शिक्षा, भाषा, धर्म, वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति और सामाजिक व शैक्षिक रूप से पिछडे वर्गों की तरक्की जैसे कुछ सास्कृतिक विषयो का ही जिक्र है । इसमे कही भी इस समस्या का क्रमबद्ध वर्णन नही है । इसकी प्रस्तावना मे लोकतान्त्रिक समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की एक सामान्य दिशा तो मौजूद है पर इसके कुछ दूसरे प्रावधानो मे हिंदुओ के रीति रिवाजो का इजहार मिलता है (देखें पृष्ठ 18)। सरकार भी संस्कृति का सवाल कभी समग्र रूप से नही उठाती । वह इसे सभी धर्मों के लिए समान श्रद्धा की परिभाषा देकर निबटा देती है । इस प्रकार यह भारतीय राज्य और सरकार की विचारधारा मे अस्पष्ट रह जाने वाले सर्वाधिक जटिल सवालो मे से एक है ।

(ग) बहरहाल, सरकारी या शासक दलीय संस्कृति लगातार अपने विशिष्ट सास्कृतिक सिद्धात और शैली का लोगो मे प्रचार करती आ रही है । सैद्धांतिक तौर पर, इसका मानना है कि भारतीय संस्कृति एक प्राचीन संस्कृति है और इसका सबसे उत्कृष्ट रूप आर्यों की वैदिक संस्कृति थी जिसने राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, नैतिकता और अहिंसा के सर्वोच्च मानदड मानव धर्म (सार्वभौमिक आचार सहिता) का पक्ष-पोषण किया । शासक दल की संस्कृति के अनुसार इस मानव धर्म का प्रतीक अब भारतीय धर्मनिरपेक्षता है जो हर धर्म के अनुकूल है । शैली मे शासक दलीय संस्कृति सभी प्रकार के और खासकर बहुसख्यक समुदाय के कट्टरवाद को तुष्ट करने की कोशिश करती है । मसलन, लगभग सभी सरकारी कार्यक्रमो का उदघाटन पूजा, मंत्रोच्चार, शखनाद और माथे पर तिलक धारण करके किया जाता है । अंतिम ब्रिटिश वाइसराय लॉर्ड माउटबैटन के अनुसार[1] 15 अगस्त 1947 का स्वतंत्रता समारोह न सिर्फ हिंदू धार्मिक पद्धति के मुताबिक ही मनाया गया बल्कि सत्ता हस्तातरण का ऐन समय भी हिंदू ज्योतिषियो द्वारा निर्धारित किया गया था। दूसरा उदाहरण सन 1947 से लेकर हिंदू मंदिरो के पुर्निर्माण और जीर्णोद्धार मे दिए गए सरकारी सरक्षण का है। अगस्त 1947 के तुरत बाद गुजरात के एतिहासिक सोमनाथ मदिर(जिसे 11वी सदी मे महमूद गजनवी ने तबाह कर दिया था) को केंद्र सरकार की सहायता से पुनर्निमित किया गया और इसके बाद मई 1951 मे तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेंद्र प्रसाद ने वेदमंत्रोच्चार और 101 तोपो की गडगडाहट के बीच पुनरुद्धार किए गए इस मदिर मे ज्योतिर्लिंगम की स्थापना की थी। देश के विभिन्न भागो मे ऐसे मदिरो के जीर्णोद्धार और सरकारी उदघाटन समारोहो की लबी सूची है । इसी प्रकार की सास्कृतिक झलक शासक दल की राजनैतिक गतिविधियो से भी मिलती है। उम्मीदवारो का चयन हो या चुनाव प्रचार, मंत्रिमडल का गठन हो अथवा राज्यपालो, उच्चाधिकारियो और अधीनस्थ अफसरो की नियुक्ति, आयोगो और समितियो का गठन हो या परमिटो और लाइसेंसो का जारी किया जाना या फिर कही सास्कृतिक शिष्टमडलो को भेजना—ये सभी काम साप्रदायिक और जातिवादी आधार पर किए जाते हैं ।

3 दैनिक जीवन मे शासक संस्कृति

रोजमर्रा की जीवन शैली मे शासकदलीय संस्कृति कुर्सी, धन, लालच और लाभ की लालसा को जन्म देती है। इसके पनपने का आधार शासक दल के नेताओ की अभिप्रेरणा और गतिविधि मे निहित है। इन नेताओ के लिए कुर्सी से चिपके रहना और दौलत जमा करना ही जिंदगी का एकमात्र उद्देश्य है। इसकी प्राप्ति के लिए वे हर तरीके को जायज मानते है। जाहिर है, ऐसी सामाजिक दिशा के तहत षडयंत्र, छल और कपट सामान्य मानदंड हो गए हैं। यह बात शासक दल के नेताओ के रोजमर्रा व्यवहार से साफ झलकती है। वे हर कही अनेक संदेहास्पद कामो मे संलग्न रहते हैं। उनके लिए भ्रष्टाचार भारत की 'उदार' प्रणाली का तर्कसंगत नतीजा है। प्रधानमंत्री समेत उनमे से अधिकांश पर भ्रष्टाचार के गंभीर आरोप लगते आए हैं। पर वे बेशर्मी से अपनी कुर्सियो पर जमे हुए हैं। अगर ऐसा कही यूरोप मे हुआ होता तो आरोपी व्यक्ति अपने सम्मान की रक्षा के लिए या तो अदालतो की शरण लेते या सार्वजनिक पदो से चुपचाप इस्तीफा दे देते। काला धन अंधाधुंध रफ्तार से बढ रहा है। लाइसेंसो परमिटो, कोटो, सिविल ठेको, रक्षा सौदो आदि ने इसे व्यापक पैमाने पर फैला दिया है। जितना बडा सौदा होता है, उतनी ही ऊंची भ्रष्टाचार की दर और उतना ही ज्यादा काले धन का संचय होता है। जब शासक दल को अपना सांगठनिक ढांचा चलाने के लिए टनो के हिसाब से काले धन की जरूरत हो तो ऐसा हो भी क्यो नही। तस्करी, दवाओ के अवैध व्यापार, विदेश व्यापार मे हेराफेरी, विदेशी मुद्रा की धोखाधडी और विदेशी बैंको मे काले धन की जमा से सालाना अरबो रुपए भारतीय जनता से लूट लिए जाते है। कर चोरी से सरकारी खजाने को सहज ही ठगा जाता है। नकली करंसी नोट चिट फंड कंपनियां फर्जी रोजगार दफ्तर, पासपोर्ट और वीसा एजेंसियां हजारो लोगो से पैसा ऐंठती जा रही हैं। सिनेमा टिकटो की कालाबाजारी देश भर मे चरम पर है। खाद्य सामग्री मे मिलावट, नशीली दवाओ का उपभोग, नकली दवाइयां, कम तोल, अवैध शराब जुआखोरी, घटिया दर्जे का सामान आदि राष्ट्रीय शगल बन गए हैं। हर कही अनैतिक माहौल हावी हो गया है।

4 आचरण के शासकीय मानदंड

(क) इस अनैतिक माहौल ने स्वार्थ, दंभ अहंकार अधिकारियो के प्रति सम्मान पर अति बल, उत्तराधिकार और पितसत्ता पर जोर, दौलत और हैसियत के भद्दे प्रदर्शन, तांबेदारी, चापलूसी, झूठ षडयंत्र, चालाकी, चुगलखोरी आदि आचरण के सभी पतित मानदंडो को जन्म दिया है। ये पतित मानदंड एक ऐसे दोतरफा सांस्कृतिक मॉडल के अनुरूप क्रियाशील हैं जिसके तहत आम लोगो के प्रति दंभ और बडे लोगो के प्रति चापलूसी सही ठहराई जाती है। राजीव की दुर्व्यवहार वाली और आक्रामक मुद्राए—मसलन अपने आलोचको को 'भौंकते कुत्ते'

कहना, अपने विरोधियों के लिए 'नानी याद करा देंगे' जैसी घुडकीभरी घोषणाएं करना, विपक्षी मुख्यमंत्रियो को यह चेतावनी देकर धमकाना कि मैं राष्ट्र विरोधी गतिविधियो की दोषी किसी भी राज्य सरकार को खुद बर्खास्त कर दूगा', मजदूरो को दुनिया मे वृहद अकुशल' वर्ग की सज्ञा देकर उन्हे हतोत्साहित करना, विपक्षी सासदो की आवाज दबाने के लिए ससद मे मर्जें पीटना आदि—सस्कृति की दभी शैली के उदाहरण है। चापलूसी की सस्कृति 1970 के दशक मे काग्रेस के इदिरा भारत है और भारत इदिरा' के जाने माने नारे अथवा 1988 मे काग्रेस के कामराज नगर सम्मेलन मे 'राजीव ही भारत के एकमात्र नेता' वाले नारे अथवा काग्रेस नेताओ और कार्यकर्ताओ द्वारा जो कोई सत्ता प्रमुख हो उसके प्रति ताबेदारी वाले रवैए से जाहिर है।

(ख) शासक दल के नेता अपने दोहरे मानदडो के ऐन मुताबिक आम लोगो को तो ज्यादा से ज्यादा कुरबानिया देने का उपदेश देते हैं पर प्राचीन युग के शाही रिकार्ड को मात करते हुए खुद आलीशान जिंदगी बसर कर रहे हैं। उन्होने अथाह धन-दौलत जमा कर ली है और बढती गरीबी के सागर मे ऐश्वय के छोटे छोटे द्वीपो का निर्माण कर लिया है। उनकी भ्रष्ट, आडबरपूर्ण और विलासितापूर्ण जीवन शैली का भारत से कोई सरोकार नही है, जहा करीब 40 करोड लोग कडी मेहनत की जिंदगी जी रहे हैं। यह जीवन शैली सामाजिक पतन के हर पहलू को बढावा देती है।

(ग) मानव धर्म की अपनी सस्कृति को दुनिया मे सर्वोत्कृष्ट गुणो की पक्षधर होने की डीग हाकते हुए शासक दल के नेता अमूमन शकुनो और ज्योतिष, तारो और ग्रहो के प्रभाव, सपनो की महत्ता, शुभ और अशुभ लग्नो, जादू टोना के अधविश्वास तत्र मत्र और वशीकरण, कुत्तो, बिल्लियो सियारो, छिपकलिया, उल्लुओ और कौओ के आचरण के साथ साथ भाग्य और कर्म की सव यापकता को मानते है। कुलदीप नायर[2] द्वारा दिए गए तथ्यो के अनुसार नेहरू भी अपने आखिरी दिनो मे धार्मिक बन गए थे', 'उनकी मौत के समय गीता और उपनिषद उनके सिरहाने पडे थे', और इससे पहले भी नेहरू के (जब वे जिंदा थे) निवासस्थान पर सवा चार लाख मृत्युञ्जय मत्रो का जाप किया गया और वे अक्सर इस अनुष्ठान मे शरीक होते थे'। इदिरा गाधी सभी प्रकार के अधविश्वासो और ज्योतिषीय भविष्यवाणियो की पक्की भगत बनी रही। राजीव इस पारिवारिक परपरा का पालन कर रहे हैं। बहुत-से मत्री, सासद, विधायक और यहा तक कि कुछ विपक्षी नेता भी तान्त्रिको, सिद्धो और ज्योतिषियो का आशीर्वाद लेते हैं।

5 दमघोटू माहौल

(क) आचरण के इन भ्रष्ट मानदडो के बढते प्रभाव से भारत मे सीमित आजादी और स्वाधीनता के वास्तविक अश मे कई धूर्त तरीको के माध्यम से और कटौती हुई है (जसा कि पीयूडीआर, पीयूसीएल और एमनस्टी इटरनेशनल[3] ने

रिपोर्टों मे कहा है)।

पहली बात तो यह कि कलह और विघटन की ताकतों (यानी साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता आदि) को लोगा म फूट डालन क लिए पूरी तरह प्रोत्साहित किया जाता है। विभिन्न धार्मिक समुदायो म साम्प्रदायिक दग कराने वाल साम्प्रदायिकता वादी, अनुसूचित जातियो व जनजातियो पर हमले करन वाल जातिवादी, और क्षेत्रीय तनावो का लाभ उठाने वाले क्षेत्रीयतावादी—लगभग य सभी ताकतें (कुछक अपवादो को छोडकर) शासक दल की उपज हैं और प्राय उसकी कृपापात्र हैं।

दूसरे, लोगो को हतोत्साहित करने के लिए सामाजिक जिंदगी म माफिया, गुडागर्दी और आतकवाद का खुलेआम बढावा दिया जाता है। नतीजतन अपराध बढते जाते है। 1982 83 और 84 के दौरान सालाना करीब 24,000 हत्याए हुइ।[4] अगर हत्याओ की सालाना औसत 10 000 भी मान ली जाए ता पिछले 40 साल मे लगभग चार लाख हत्याए हो चुकी हैं।

तीसरे, लोगो को आतकित करन के लिए बिना मुकदमा चलाए नजरबद रखना सामान्य ढर्रा बन गया है। अकेले 1975 की इमरजेंसी के दौरान ही करीब एक लाख लोगो को नजरबद किया गया।[5] अखबारी रिपोर्टों क मुताबिक पजाब म आज लगभग 10,000 बदी हैं। अपुष्ट आकलन है कि पिछले 40 साल क दौरान नजरबदी के करीब पाच लाख मामले पाए गए हैं।

चौथे, अपने अधिकारो के लिए लड रहे लोगो को बरहमी और नशसता से दबाया जाता है। कइयो को आतकवादी गतिविधि के आरोपो म दिनदहाडे गर कानूनी ढग से गोलियो से उडा दिया जाता है (जैसे नक्सलबाडी आदोलन के दौरान हुआ और इस समय आध्र और बिहार मे किसान आदोलन तथा पजाब म उग्रवाद आदि क खिलाफ हो रहा है)। गाली, लाठी आसू गस वगरह आज आम बात है। पिछले 40 साल मे ब्रिटिश शासन के 190 वष के दौरान मारे गए कुल भारतीयो से भी शायद ज्यादा लोग मारे गए है।

शासको के इस प्रतिशोधी रवैए के कारण हर कही दमघोटू माहौल व्याप्त है। लेकिन वे खेद प्रकट करने के बजाय गवपूण दावे करते है कि भारत का साम्प्रदायिक रिकाड कम से कम पाकिस्तान से बुरा नही है।

(ख) इस माहौल न कमजोर वर्गों खासकर अनुसूचित जातियो व जनजातियो, अल्पसख्यको (ज्यादातर मुसलमानो और सिखो) और महिलाओ के उत्पीडन की रफ्तार तेज कर दी है। अनुसूचित जातिया व जनजातिया (जो कुल आबादी का 21 फीसदी हैं और जिनमे ज्यादातर भूमिहीन गरीब किसान और कुछ हद तक औद्योगिक मजदूर आते हैं) अभी भी सामाजिक तौर पर घटिया और अछूतो वाली जिंदगी जी रहे हैं। छआछूत निरोधक कानूनो से उन्हे कोई खास फक नही पडा है। इस तथ्य की पुष्टि अनुसूचित जातियो व जनजातियो हतु आयुक्त की निरतर सालाना रिपोर्टों से होती है। हर रोज अनुसूचित जातियो व जनजातियो की किसी श्रेणी पर एक या

दूसरा अत्याचार ढाए जाने की खबरें मिलती हैं। देश के हर भाग मे उन्हे जुल्म का और कई बार तो क्रूर हमलो का शिकार बनाया जाता है जिसका नतीजा हत्याओ, अग काट लेने और पूरे परिवारो, बस्तियो और गावो को जिंदा जला देने मे निकलता है। नेहरू के जमाने से शुरू हुआ यह सिलसिला आज भी बरोकटोक जारी है। शासक दल ने कुछ विशेष रियायतें (राजनैतिक और आर्थिक दोनो) देकर जैसे कि विधायिका, प्रशासन और शक्षिक सस्थाओ म आरक्षण मुहैया करके अनुसूचित जातियो व जनजातियो मे एक ऊँची श्रेणी पैदा कर ली है। यह श्रेणी शासक दल और उसकी सरकार के लिए प्राय सुरक्षा कवच का काम देती है।

अल्पसख्यक (जो कुल आबादी का 17 फीसदी हैं), खासकर मुसलमान और सिख भी भेदभाव और राजनैतिक उत्पीडन का शिकार हैं। साप्रदायिक वारदाता की सख्या लगातार बढी है। मसलन गौर करें कि अति असामान्य वष 1946 मे भी उत्तर प्रदेश म 347 साप्रदायिक दगे हुए थे जिसमे कुल 148 व्यक्तिगत और सामूहिक हत्याए हुइ लेकिन 38 साल बाद 1984 मे तीन दिन क सिख विरोधी दगो के दौरान अकेले दिल्ली मे ही करीब 2,700 लोग मारे गए।

महिलाओ की दशा भी कठोर है। तथाकथित उद्धारक कानूना (हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, दहेज अधिनियम आदि) ने महिलाओ की जिंदगी मे मामूली अतर ही डाला है और इनका लाभ ज्यादातर उच्च वग की महिलाओ को ही मिला है। बहु जलाना[6], विधवा जलाना और पैदा होते ही कन्याओं की हत्याए आज भी जारी हैं, कही कम तो कही ज्यादा। तकनीकी तौर पर कानून तो मौजूद हैं मगर व्यावहारिक तौर पर वे पुनरुत्थानवादी सस्कृति के नीचे दब गए हैं। इसलिए महिलाओ के साथ बडी हद तक अभी भी निदयतापूवक व्यवहार किया जाता है, उनसे भेदभाव होता है और उन्ह सामान्य जीवन नही जीने दिया जाता। बालिका के मुकाबले अभी भी बालक की इच्छा की जाती है। शादी से पहले हर महिला की जिंदगी पिता पर, शादी के बाद पति पर और पति की मृत्यु के बाद पुत्र पर निभर होती है। वह हमेशा पुरुषो पर निभर और उन्ही के अधीन रहती है।

शासक दल अनुसूचित जातियो व जनजातियो, अल्पसख्यकों और महिलाओ के उत्पीडन पर घडियाली आसू तो बहाता है मगर इन श्रेणियों की दयनीय दशा उसकी सामाजिक व्यवस्था और नीतियो के ही कारण हुई है।

6 शासक सस्कृति के लिए प्रचार माध्यम का इस्तेमाल

अपनी सस्कृति का विस्तार करने और इसकी जड़ें गहरी करने के लिए शासक दल समूचे सरकारी प्रचार माध्यम (जो इसकी सस्कृति का एक आधार स्तभ है)— रेडियो, टीवी, सरकारी प्रकाशन, कला एव सस्कृति सबधी समितियो आदि का पूरा-पूरा इस्तेमाल करता है। ये सरकारी प्रचार माध्यम एक तरफ तो अमूमन सभी किस्म के और खासकर हिंदू कट्टरवादी विचारो का प्रचार करते हैं तथा दूसरी

ऐसी भद्दी और अश्लील जीवन शैली को प्रोत्साहन देते हैं जो अंधविश्वास पर आधारित रहस्यवाद-सह हिप्पीवाद का प्रतिरूप है।

इस संस्कृति का दूसरा आधार स्तंभ इसकी शिक्षा प्रणाली है जो न तो भारतीय लोगों के हितों और न देश की जरूरतों के अनुरूप है। यह एक तरफ तो अमूमन साम्प्रदायिक जातिवादी या क्षेत्रीय दृष्टिकोण के सांचे में ढली हुई है और दूसरी तरफ धन, स्वार्थ, आदि की आकांक्षाएं जगाती है। पाठ्य पुस्तकें भगवान, भाग्य, नर्क, स्वर्ग आदि की भ्रांतियों से भरी पड़ी हैं। वे खास तौर पर सरकार और शासक दल के नेताओं का गुणगान करते हुए उन्हें सामाजिक विकास के रचयिता और लोगों के हित रक्षक बताती हैं। समाज में विचारधारा का मुख्य अस्त्र इतिहास, शासक दल के दृष्टिकोण से पढ़ाया जाता है। एक तरफ बताया जाता है कि भारतीय इतिहास मूल रूप से हिंदुओं उनके धर्म तथा जाति, परिवार और विवाह के उनके सामाजिक संस्थानों की गाथा है—जो दुनिया में कहीं न पाई जाने वाली सांस्कृतिक निरंतरता प्रदान करते हैं। दूसरी तरफ कहा जाता है कि मौजूदा भारत के निर्माता कांग्रेस और उसके नेता ही हैं।

7 संस्कृति की दूसरी किस्में

शासक दल की प्रचलित संस्कृति हालांकि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में प्रमुखता रखती है पर संस्कृति की कुछ दूसरी किस्में भी यहां क्रियाशील हैं। इनमें कुछ किस्में परंपरागत हैं (जैसे विभिन्न जातिवादी संस्कृतियां, धार्मिक संस्कृतियां और क्षेत्रीय संस्कृतियां), कुछ अर्द्ध आधुनिक हैं (जैसे विभिन्न उपराष्ट्रीयताओं अथवा राष्ट्रीयताओं की संस्कृतियां, भाषायी संस्कृतियां और वर्गों अथवा समूहों की संस्कृतियां) तथा एक नई पैदा हो रही अंतरराष्ट्रीयवादी संस्कृति है जो हमारे दौर की आधुनिक संस्कृति है। शासक दल की संस्कृति इसलिए प्रभुत्व रखती है क्योंकि यह पुनरुत्थानवाद और अर्द्ध आधुनिकवाद का सम्मिश्रण है। इसका चरित्र प्रतिक्रियावादी इसलिए है कि यह पुनरुत्थानवाद को प्रमुख हैसियत देती है। इस युग में परंपरागत संस्कृतियां रचनात्मक दिशा देने के काबिल नहीं हैं। अर्द्ध आधुनिक संस्कृतियों की कुछ समय तक सीमित दिशा देने की उपयोगिता है। अंतरराष्ट्रीयवादी संस्कृति ही नव परिवर्तित दुनिया के अनुकूल एक उचित दिशा है। इसका मतलब है देशों की अंतर निर्भरता से पैदा हुई मौजूदा सांस्कृतिक समस्याओं पर अंतरराष्ट्रीयवादी दिशा के आधार पर सोच विचार करना।

8 संस्कृति का रचयिता कौन

यह विवादास्पद सवाल रहा है। मार्क्सवाद का मत है कि सामाजिक वर्ग अपनी उत्पादन क्रिया के दौरान संस्कृति का विकास करते हैं जिसमें विशिष्ट व्यक्ति गौण

भूमिका निभाते है। पश्चिमी उदारवादियो का मत है कि विशिष्ट अथवा प्रतिभाशाली व्यक्ति अपने अपने क्षेत्रो मे सस्कृति को जन्म देते हैं और इसमे जनसामान्य की कोई भूमिका नही होती। धर्म का दावा है कि इसकी रचयिता मात्र आलौकिक शक्ति ही है। मगर सस्कृति की बहुपक्षीय और बहुआयामी प्रक्रिया बताती है कि कोई एक सामाजिक इकाई (पश्चिमी उदारवादियो का प्रतिभाशाली व्यक्ति हो या मार्क्सवादियो का वर्ग) वास्तुकला सगीत, भाषा, खान पान, धूम्रपान, रहस्यवाद, मध्यकालीन साहित्य, नए वैज्ञानिक विचारो आदि जैसे मानवीय आचरण की विधाओ की स्रोत न तो होती है और न ही हो सकती है। जाहिर है अलग-अलग सामाजिक क्षेत्रो से जुडी विभिन्न सामाजिक इकाइया सस्कृति की विभिन्न विधाओ को जन्म देती हैं, जैसे वास्तुकला इकाई वास्तुकला विधा को, भाषायी इकाई भाषायी विधा का आदि आदि जन्म देती है। किसी भी क्षेत्र मे विशिष्ट व्यक्ति और समूह के बीच व्यावहारिक सबध मे विशिष्ट व्यक्ति (आकडो और तथ्यो को सैद्धातिक रूप देकर) परिष्करण सयत्र जैसी भूमिका निभाता है जबकि समूह इस प्रक्रिया मे कच्चा माल (यानी आकडे और तथ्य) मुहैया कराता है। सामूहिक सामाजिक इकाई (साहित्यिक हो, कलात्मक या कोई अन्य) सबद्ध आकडे और तथ्य जुटाते वक्त मूल भूमिका निभाती है जबकि विशिष्ट व्यक्ति आकडो और तथ्या का विश्लेषण करके उन्हे सिद्धात मे सूत्रबद्ध करते समय मूल भूमिका निभाता है। आकडो और तथ्यो का स्रोत सामाजिक श्रम विभाजन और उससे जुडी टेक्नोलॉजी मे निहित होता है जबकि उन्हे जुटाने का काम सामूहिक सामाजिक इकाई (यानी किसी विशेष क्षेत्र मे काम कर रहे समूचे लोगो) के जिम्मे होता है। अब उनकी व्याख्या और सैद्धातिक सूत्रीकरण का काम विशिष्ट शाखा से जुडा कोई विशिष्ट व्यक्ति करता है। सस्कृति को महज मनुष्य के स्वभाव का प्रतिबिंब मानने वाले लोग उसके सामाजिक आधार की अनदेखी करते है (सामाजिक आधार में परिवर्तनो के कारण ही मनु के पशु चराई वाले युग के जातिवादी मानवीय स्वभाव की जगह आधुनिक युग के धर्मनिरपेक्ष मानवीय स्वभाव ने ली)। दूसरी ओर सस्कृति को महज सामाजिक प्रतिबिंब मानने वाले लोग उसकी मानवीय विशेषताओ की उपेक्षा करते हैं (मानवीय विशेषताओ का प्रतीक रूप मानवीय सोच है जो हमे विभिन्न चीजो की सरचना और आचरण के बारे मे वास्तविक ज्ञान मुहैया कराती है, उक्त तथ्यो के आधार पर सिद्धातो को सूत्रबद्ध करती है तथा विभिन्न हालात से निबटने के लिए हमे समाधान सुझाती है)। कुल मिलाकर, सस्कृति एक जैव-सामाजिक प्रक्रिया है। विभिन्न विशिष्ट व्यक्ति अपनी सामूहिक मानवीय इकाइयो के सहयोग से अपने समय के सामाजिक आधार पर इसके विभिन्न तत्वो को आकार देते हैं।

9 भारतीय सस्कृति का योगदान

(क) इतिहास बताता है कि भारत मे प्रचलित रही विभिन्न

संस्कृतियों—कुलीय, कबीलाई, जातीय, धार्मिक, क्षेत्रीय, वर्ग आधारित, भाषायी, उपराष्ट्रीय, उपनिवेशी, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय आदि—में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों मूल्य हैं। सकारात्मक रूप से भारतीय संस्कृति मानवीय आचरण के उन मानदंडों की प्रतीक है जो मानवतावाद, आत्मत्याग, संयम, परोपकार, निष्ठा, सद्भाव, संतोष, धैर्य आदि जैसे नैतिक गुणों और उच्च आचरण को भारी महत्व देते हैं। नकारात्मक रूप से इसमें जाति प्रथा (जिसके तहत शूद्रों को मानव अधिकार नहीं हैं), साम्प्रदायिक रूढ़िवाद (जिसमें मनुष्य और मनुष्य के बीच धार्मिक आधार पर घृणा पनपती हैं) तथा उपनिवेशी सिद्धांत (जिसमें सत्ता का केंद्र किसी बाहरी एजेंसी को बनाया जाता है) का समावेश है। भारतीय संस्कृति के इस दोतरफा चरित्र का तकाजा है कि एक तरफ हमें इसके उत्कृष्ट मानदंडों को ऊंचा उठाकर उनका विकास करना चाहिए और दूसरी तरफ इसके अप्रतिष्ठित मानदंडों को एकदम जड़ से उखाड़ देना चाहिए।

(ख) लेकिन कुछ लोग भारतीय संस्कृति के मूल्यों को काल्पनिक रूप में पेश करके इसे रहस्यमय बना देते हैं। ऐसा ही एक मिथक यह है कि भारतीय संस्कृति सहनशीलता की भावना से ओत प्रोत है, जो दुनिया की किसी दूसरी संस्कृति में नहीं मिलती। लेकिन एतिहासिक रूप से इसका खंडन न सिर्फ सदियों से शूद्रों से (और बाहर से आए मुसलमानों और ईसाइयों से भी) की जा रही छुआछूत के प्राचीन सांस्कृतिक मानदंड बल्कि 1947 उपरांत भारतीय जन जीवन में साम्प्रदायिक और जातिवादी हिंसा की बढ़ती लहर से भी होता है।

(ग) एक अन्य मिथक यह है कि भारतीय संस्कृति की आस्था विवाद के मुकाबले मेलमिलाप में है। लेकिन ऐतिहासिक रूप से इसका भी खंडन न सिर्फ दो सबसे बड़े पारंपरिक पौराणिक ग्रंथों (रामायण और महाभारत, जो हिंसात्मक विवादों से भरे पड़े हैं) बल्कि अति प्राचीन समय से इस देश के शासकों के पाशविक युद्धों से भी होता है (भारतीय इतिहास की आधी अवधि तो इन युद्धों में ही बीती)।

(घ) फिर, एक और मिथक यह है कि भारतीय संस्कृति इस भौतिक संसार अथवा ऐतिहासिक बोध के मुकाबले आध्यात्मिक सांसारिकता को ज्यादा महत्व देती है। लेकिन एतिहासिक रूप से इसका भी खंडन न सिर्फ वैदिक और पौराणिक साहित्य बल्कि 1947 उपरांत सत्ता धन दौलत स्वार्थ और लाभ की लालसा से भी होता है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में छल, फरेब चारी डकैती बेईमानी, प्रलोभन, व्यभिचार, शराबखोरी, जुएबाजी आदि के वर्णन से हमें उस जमाने के मानदंडों का पता चलता है। ऋगवेद के नौवें अध्याय में सोमरस (शराब) की खूबियों का वर्णन है। सत्पथ ब्राह्मण में मांस को सर्वोत्तम भोजन बताया गया है जबकि ऋगवेद और यजुर्वेद गौमांस खाने की निस्संकोच वकालत करते हैं। महाभारत के पांच नायकों, पांडवों द्वारा जुए के दांव में अपनी समस्त संपत्ति और यहां तक कि अपनी सामूहिक प्रिय पत्नी को भी हार बैठना, एक दिलचस्प उदाहरण है।

(ड) प्राचीन भारत मे इतिहास को ज्यादा महत्व न दिए जाने का कारण दरअसल कम सिद्धात मे व्यापक आस्था का होना है। इस सिद्धात पर चलने वाला व्यक्ति अन्वेषण व अनुसधान से दूर और निष्क्रियता की भावना से ओत प्रोत होता है तथा इस तरह उसकी चेतना कुद रहती है। दूसरे धर्मों की तरह आध्यात्मिक सासारिकता की बात महज आदश रही है। पर यह प्रमुख जीवन शैली कभी नही रही। रघुकुल के राम रहे हो या इस समय राजीव, सत्ता और धन की लालसा हमेशा चली आई है।

सदभ

1 टाइम्स लदन, परिशिष्ट, जनवरी 1973
2 'इडिया आफ्टर नेहरू', वीपी हाउस दिल्ली, 1975, प० 2
3 जिसकी जुलाई 1988 की रिपोट मे भारत सरकार पर नकली मुठभेडो मे अनेक 'उग्रवादियो की हत्याओ और पुलिस हिरासत मे प्राय मौता समेत व्यापक पुलिस अत्याचार और मानव अधिकारो के दूसरे उल्लघनो के आरोप हैं।
4 'स्टेटिस्टिकल आउटलाइस आफ इडिया 1986-77', टाटा सर्विसज लि०, बबई।
5 मासिक 'सेमिनार', माच 1977, प० 17
6 'फ्रेश पेंस्पेक्टिव्ज आन इडिया ऐंड पाकिस्तान', बुक ट्रेडस लाहौर, 1987, पृ० 9

अध्याय छह
भारतीय कूटनीति-सह-रक्षा नीति

इससे अभिप्राय भारत द्वारा एक तरफ अपने विदेशी संबंधों (यानी विदेश नीति) की व्यवस्था करने और दूसरी तरफ अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के मामलों (यानी रक्षा नीति और सशस्त्र सेनाओं) का संचालन करने से है।

1 विदेश नीति बनाने वाले तत्व

किसी देश की विदेश नीति अनेक तत्वों जैसे कि वहां की सरकार अथवा शासक दल के राजनैतिक प्रयोजन या उद्देश्य, भौगोलिक स्थिति, मानवीय एवं प्राकृतिक स्रोतों, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि पर आधारित होती है। इनमें से पहला तत्व खास तौर पर प्रमुख भूमिका निभाता है।

2 भारतीय विदेश नीति का सिद्धांत

सैद्धांतिक तौर पर, भारत की विदेश नीति नेहरू ने इन्हीं तत्वों और खास तौर पर भारत को दक्षिण एशिया में प्रभुत्वकारी क्षेत्रीय ताकत बनाने के अपनी पार्टी के राजनैतिक उद्देश्य के मद्देनजर तैयार की। लेकिन इसमें क्षेत्रीय प्रभुत्व का पुट होने के बावजूद नेहरू[1] ने अपनी विदेश नीति को शांति और गुटनिरपेक्षता की नीति करार दिया। यानी ऐसी नीति जिसका लक्ष्य शांति स्थापित करना और जिसकी कार्यशैली दोनों महाशक्तियों (जिनके इर्द गिर्द तब दुनिया बंटी हुई थी) से गुटनिरपेक्ष रहना थी। उपनिवेशी जकड़ से तब छुटकारा पा रहे अल्पविकसित देशों के संदर्भ में गुटनिरपेक्षता की व्याख्या पांच सिद्धांतों के रूप में की गई (पंचशील कहे जाने वाले इन सिद्धांतों को 1954 में भारत और चीन के बीच हुई एक व्यापार संधि की प्रस्तावना में पहली बार शामिल किया गया)। ये हैं एक दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता एवं प्रभुसत्ता का सम्मान, अनाक्रमण, एक-दूसरे के अंदरूनी मामलों में अहस्तक्षेप, समानता एवं पारस्परिक लाभ तथा शांतिपूर्ण सहअस्तित्व।

3 भारतीय विदेश नीति का व्यवहार

व्यावहारिक तौर पर, भारतीय विदेश नीति ने शांति और गुटनिरपेक्षता की अपनी घोषणाओं के बदले भारत को प्रभुत्वकारी क्षेत्रीय ताकत बनाने के शासक दल के राजनैतिक उद्देश्य की ही पूर्ति की है। यह बात पहले दो महाशक्तियों और उनके अपने-अपने यूरोपीय सहयोगियों के प्रति तथा फिर नव स्वतंत्र देशों के प्रति इसके व्यवहार में देखी जा सकती है।

(1) भारत और दो महाशक्तियां व उनके पश्चिमी सहयोगी

(क) दो महाशक्तियो और उनके अपने अपने यूरोपीय सहयोगियो के साथ भारत के सबधो के मामले म नेहरू की विदेश नीति ने शुरू मे ब्रिटेन से पारपरिक रिश्ते बनाए रखे। 1947 49 के दौर मे भारतीय सेना ने ब्रिटिश कमान क तहत ब्रिटिश सेना के साथ सयुक्त सैनिक अभ्यासा म शिरकत जारी रखी। भारत ने 1947 49 के दौरान बर्मा और मलाया के राष्ट्रवादी आदोलनो के खिलाफ हथियार, विमान और भारत की धरती पर गोरखाओ को भर्ती करने की सुविधाए देकर ब्रिटिश सरकार को समथन देना भी जारी रखा। 1949 मे भारत ने ब्रिटिश पौंड के अवमूल्यन के बाद रुपए का अवमूल्यन किया।

(ख) 1950 से भारतीय विदेश नीति का झुकाव अमेरिका की ओर होने लगा। उसी साल भारत ने सयुक्त राष्ट्र सघ मे अमरिकी प्रस्ताव का समथन किया जिसके तहत अमेरिका और उसके 16 सहयोगी देशो की सेनाओ को कोरिया पर आक्रमण का अधिकार मिला। फिर भारत ने 1951 मे कोरिया मे अमेरिका समथक सेनाओ की सहायता के लिए एक चिकित्सा दल भेजा। उस समय कुछ अमेरिकी अखबारो द्वारा भारत की विदेश नीति को तटस्थ बताए जाने का खडन करते हुए सयुक्त राष्ट्र म भारत की तत्कालीन स्थायी प्रतिनिधि और नेहरू की बहन विजयलक्ष्मी पडित ने कहा था, "खेद है कि हम पर तटस्थता का बिल्ला चिपकाया गया है। सयुक्त राष्ट्र महासभा की हाल की बैठको मे हमने आपके (अमरिका के) समथन मे 38 बार मत दिया, 11 बार हमने मतदान मे भाग नही लिया और सिफ दो बार आपसे भिन्न मत प्रकट किया।" 1950 मे भारत ने अमेरिका द्वारा अतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर साम्यवाद को रोकने की खातिर सयुक्त कायक्रम बनाने के लिए बुलाए गए बागुइयो सम्मेलन (फिलीपीस) मे भी भाग लिया। 1950 मे ही भारत ने अमरिका के साथ पॉइट फोर सैनिक सधि की। इस प्रकार की सधि अमरिका पहले फिलीपीस और थाइलड से भी कर चुका था। 1950-53 के दौरान भारत ने वियतनाम के विरुद्ध युद्ध सामग्री पहुँचाने के लिए फ्रास को भी वायु परिवहन सुविधाएँ प्रदान की।

(ग) 1954 मे जब पाकिस्तान अमेरिका की प्रायोजित सीएटो सैनिक सधि मे शामिल हुआ तो भारत की विदेश नीति एक या दूसरी महाशक्ति के साथ चुनिंदा गठजोड के आधार पर चलने लगी। 1955 में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव और सोवियत प्रधानमत्री ने भारत की यात्रा की। दोनो देशो के बीच व्यापार समझौते हुए। रूस न भारत को हथियार बचना भी शुरू किए। 1956 म रूस न जब पोलंड और हगरी मे अदरूनी विरोध दबाने के लिए सेना भजी तो भारत न इसकी आलोचना नही की जबकि उसी वष इगलैंड-फ्रास इजरायल द्वारा मिस्र पर सयुक्त आक्रमण की निंदा करन मे भारत न अमरिका और रूस का साथ दिया। यही नही, भारत ने सयुक्त राष्ट्र म पारित उस प्रस्ताव का भी विरोध किया जिसम

हगरी मे रूसी हस्तक्षेप की निंदा करते हुए उसे वहां से अपनी सेनाएं हटाने को कहा गया था। 1958 में अमेरिकी राष्ट्रपति ने भारत की यात्रा की। 1960 म भारत ने सयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान मे अपने सैनिक दस्ते कागो भेजे। यह कदम अमेरिका क अनुकूल था। भारत ने जहा सीएटो और सेंटो सैनिक सधियों का विरोध किया, वहीं राष्ट्रमडल के एक सम्मेलन म नाटो सैनिक सधि का समथन भी किया।* 1956 से 62 के दौरान भारत न अल्जीरिया की अस्थायी सरकार को मान्यता देने स इनकार किया। देश मे तीसरे आम चुनाव के कुछ पहले (1961 मे) भारतीय सेना न गोआ म दाखिल होकर पुतगाल के उपनिवेशी प्रशासन को खदेड़ दिया तथा गोआ, दमन और दीव को भारत सघ मे शामिल कर लिया।

(घ) 1962 म चीन के साथ हुए सीमा युद्ध के बाद भारतीय विदेश नीति दोहरे गठजोड की रही। तब भारत ने दोनो महाशक्तियो स सैनिक सहायता लेना शुरू की। 1963 के दौरान भारत न अमेरिका और ब्रिटेन को अपन सैनिक अड्डो और चौकियो का निरीक्षण करने देने की शर्तों पर उनसे हथियार लिए, उनकी अगुआई म भारत म वायुसेना के सयुक्त अभ्यास आयोजित किए तथा अमेरिका के साथ वायस ऑफ अमेरिका समझौता सपन्न किया। भारत न अमरिका को वियतनाम और एशिया म उसके दूसरे ठिकानो तक सैनिक सामग्री पहुँचाने क लिए कई साल तक सप्ताह म दो बार हवाई पट्टियो को इस्तेमाल करन की सुविधा प्रदान की। इस समय तक गुटो मे शामिल और गुटनिरपेक्ष देशो क बीच अतर बहुत हद तक मिट चुका था। गुटो से जुडे देशो, जसे थाइलड और फिलीपीस के साथ सबध सुधरे।

(ङ) लालबहादुर शास्त्री के जमाने मे विदेश नीति का रूस के प्रति झुकाव कम होने के साथ साथ वियतनाम और कबोडिया सबधी अमरिकी नीतियो की आलोचना नरम हो गई। यह बात ससद के प्रश्नोत्तरो से जाहिर होती है।

(च) इदिरा गाधी ने अपन शासनकाल के शुरू म अमेरिका से दोस्ताना सबध मजबूत करने की कोशिश की (1966 में इदिरा और जानसन ने एक सयुक्त बयान म चीन को शाति के लिए खतरा बताते हुए वियतनाम मे अमरिकी रुख का समथन किया, उसी साल भारतीय रुपए का अवमूल्यन किया गया आदि)। लकिन बाद मे घरेलू विवशता (वामपथी नारो और कम्युनिस्टो की मदद से प्रतिद्वद्वी काग्रेस गुट को मात देने की खातिर) तथा पाकिस्तान को अमेरिका के निरतर समथन क कारण वे अपनी विदेश नीति को रूस की ओर मोडने को प्रवृत्त हुइ। 1968 मे जब रूस ने अपनी सेना चेकोस्लोवाकिया के लोगो को दबाने के लिए भेजी तो वे चुप रही। विरोधस्वरूप केंद्रीय मत्री अशोक महता ने इस्तीफा दे दिया। 1971 म उन्हाने रूस साथ 'शाति, मित्रता और सहयोग की सधि पर हस्ताक्षर किए। इस सनिक सधि का फायदा भारत को पाकिस्तान से बाग्लादेश की 'मुक्ति' कराने म मिला।

(छ) जनता शासन मे भारत सोवियत सधि के रहते भी अमेरिका से सबध सुधारे गए। पडोसियो के साथ सबध बेहतर बनाने और चीन से सामान्य रिश्ते

बनाने की कोशिशें की गईं।

(ज) इंदिरा शासन के दूसरे दौर (1980 84) मे भारतीय विदेश नीति का झुकाव फिर रूस की तरफ हुआ। भारत ने अफगानिस्तान में रूसी हस्तक्षेप की आलोचना नहीं की। उसने वियतनाम समर्थित कंबोडिया सरकार को भी मान्यता दे दी। भारत ने हिंद महासागर मे दिएगो गार्शिया मे अमेरिकी सैनिक अड्डा बनाने की तो आलोचना की पर उसने रूसी नौसेना को अपनी बंदरगाहो मे सुविधाएं देना भी जारी रखा।

(झ) राजीव के शासन मे अमेरिका के साथ इस शर्त पर संबंध सुधारने की कोशिश की गई कि वह पाकिस्तान को सैनिक सहायता बंद कर देगा। लेकिन अमेरिका को यह मंजूर नहीं है। इसलिए रूस की तरफ पुराना झुकाव बदस्तूर जारी है। बहरहाल तनाव कम करने के लिए दो महाशक्तियो के बीच वार्तालाप के नए संबंधो और दुनिया की दूसरी घटनाओ का असर भारत की विदेश नीति पर निश्चय ही पड़ेगा।

(II) भारत और नवस्वतंत्र देश

(क) जहा तक नवस्वतंत्र देशो के प्रति पचशील की उपयोगिता का संबंध है, भारतीय विदेश नीति का चरित्र दोतरफा रहा है। एक तरफ दक्षिण एशिया से बाहर के देशो के प्रति इसे लागू करने मे थोड़ी भिन्नता रही है जबकि दूसरी तरफ दक्षिण एशियाई देशो के प्रति इसका उपयोग बिलकुल ही उलटा रहा है।

(ख) उत्तरी सीमाओ के प्रति 1947 उपरांत भारतीय विदेश नीति ब्रिटिश उपनिवेशवाद से रत्ती भर भिन्न नहीं रही। सिक्किम म भारत ने 1949 म भी वहा के शासको के खिलाफ स्थानीय विद्रोह को दबाने के लिए अपनी सेना भेजी थी। तब भारत ने वहा के शासको को सरक्षित राज्य की हैसियत से अपने साथ निकट संबंध बनाने को बाध्य किया था। उसी साल भारत ने भूटान के साथ एक संधि की। इसके तहत भारत ने विदेशी मामलो मे भूटान को सलाह देने का ब्रिटेन का अधिकार खुद हासिल कर लिया। नेपाल म भारत का दबदबा कायम रहा। 1950 मे जब भारत सरकार ने राणाओ की सदियो पुरानी जकड तोड़ने म नेपाल के राजा को समर्थन दिया तो उसका प्रभाव और बढ गया। इस तरह नेहरू सरकार शुरू से ही सरक्षित राज्यो की कडिया जोड़ने म लगी रही। लेकिन इसके बावजूद इंदिरा गाधी ने 1974 मे सिक्किम को जबरन भारत मे शामिल कर लिया। भूटान पर भारतीय शिकंजा और कस दिया गया। नेपाल के साथ भारत ने 1950 मे मित्रता की एक संधि पर दस्तखत किए जो एक दशक तक ठीकठाक चली। पर 1960 में जबसे नेपाल ने दलविहीन पचायत व्यवस्था शुरू की है वह भारत पर राजा की सरकार को पलटने और प्रभुत्ववादी तेवर दिखाने के आरोप लगाता आया है। भारत नेपाल संबंधो म मुख्य बाधा भारत का 'बड़े भाई वाला' रवैया रहा है जिसके विरोध म नेपाल ने

चीन के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने की कोशिश की है। दूसरी कई बाधाएं भी हैं— मसलन, भारत के साथ व्यापार और आवाजाही की संधि की शर्तों को लेकर नेपाल का असंतोष युद्ध को शांति क्षेत्र घोषित करने के नेपाल के प्रस्ताव पर भारत का विरोध क्योंकि भारत समझता है कि इससे नेपाल उसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर हो जाएगा, नेपाल की मौजूदा दलविहीन पंचायत व्यवस्था के कुछ विरोधियों का भारत में बना रहना आदि।

(ग) भारत की पूर्वी सीमा पर, पाकिस्तान के टूटने और स्वतंत्र बांग्लादेश बनने के बाद भारत-बांग्लादेश संबंध बहुत मधुर बन गए थे क्योंकि इसमें भारतीय सेना ने प्रमुख भूमिका निभाई थी। लेकिन 1975 में मुजीबुर्रहमान की हत्या के बाद से ये संबंध खराब चले आ रहे हैं। भारत बांग्लादेश संबंधों में मुख्य बाधाएं भारत में रह रहे चकमा शरणार्थियों द्वारा ढाका प्रशासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष छेड़ना, गंगा जल का बंटवारा, सीमा पर अतिक्रमण आदि हैं। मौजूदा इरशाद सरकार अर्से से आरोप लगाती आ रही है कि चकमा विद्रोह भारत की ही करतूत है और वह बांग्लादेश के प्रति प्रभुत्ववादी आकांक्षाएं रखता है।

(घ) भारत-बर्मा संबंध चाहे ऊ नू की नागरिक सरकार रही या नेविन का सैनिक शासन, 1947 के बाद कभी ज्यादा घनिष्ठ नहीं रहे। मतभेद का प्रमुख मुद्दा नागरिकता विहीन भारतीयों का था जिनके खिलाफ 1948 के बाद बर्मा में लगातार साम्प्रदायिक दंगे होते आए हैं। इसकी वजह से उनकी आबादी 1931 के 10,17 825 से कम होकर करीब दो लाख रह गई है। उन्हें बर्मी नागरिकता देने की समस्या अभी भी नहीं सुलझ पाई है।

(ङ) 1947 के बाद भारत श्रीलंका संबंध मधुर तो नहीं पर अमूमन सामान्य रहे हैं। श्रीलंका की विदेश नीति में लगातार ऐसे मित्रों की तलाश का तत्व हावी रहा जिससे वह भारत की प्रभावक्षमता को निष्क्रिय कर सके। आजादी के शुरुआती वर्षों में यूनाइटेड नेशनल पार्टी (यूएनपी) की अगुआई में श्रीलंका ने ब्रिटेन से करीबी संबंध बनाए रखे। पर 1956 में सत्ता संभालने के बाद भंडारनायके और उनकी पत्नी दोनों की अगुआई में श्रीलंका फ्रीडम पार्टी ने चीन और तीसरी दुनिया के दूसरे देशों के साथ संबंध विकसित किए। हाँ, क्षेत्रीय शक्ति संतुलन में वे भारत को महत्वपूर्ण तत्व जरूर मानते रहे। यही परंपरा यूएनपी के डडले सेनानायके और जयवर्द्धने के शासनकाल में रही। भारत श्रीलंका संबंधों में मुख्य बाधाएँ श्रीलंका में नागरिकता विहीन तमिलों का मसला, कच्चातिवू द्वीप पर विवाद, श्रीलंका के तमिलों की जातीयता आदि को लेकर रही है। पहला और दूसरा मसला शास्त्री और इंदिरा के शासनकाल में हल कर लिया गया। पर तीसरी समस्या '80 वाले दशक के शुरू में विस्फोटक बन गई। इस पर भारत ने पहले तो वहां के तमिलों को पैसा, हथियार, प्रशिक्षण और पनाह देकर उनका साथ दिया लेकिन बाद में उनके खिलाफ श्रीलंका की ओर से लड़ाई छेड़कर वह क्षेत्रीय आरक्षक की भूमिका पर उतर आया।

(च) दक्षिण पूर्व एशिया भारतीय विदेश नीति म कोई इतना महत्वपूर्ण क्षेत्र नही रहा है। 1949 मे इडानेशिया पर हालैंड के हमले से पैदा हुए मसले पर एक सम्मलन आयोजित करने के सिवा इस क्षेत्र म इसकी कोई खास उपलब्धि नही रही। हाल ही के वर्षों मे भारत और इस क्षेत्र के कुछ देशा मे आर्थिक सबध बढे है।

(छ) जापान पिछले चार दशको के दौरान ज्यादातर अर्सा मे भारतीय विदेश नीति म पश्चिमी देशो और निकट पडोसियो की तुलना मे उतने महत्वपूण स्थान पर नही रहा। मगर कुछ साल पहले जापान के आर्थिक महाशक्ति के तौर पर उभरने के बाद वह भारतीय विदेश नीति म प्राथमिकता वाला क्षेत्र बन गया है।

(ज) पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका को भारतीय विदेश नीति मे महत्वपूर्ण स्थान मिलता आ रहा है। इसकी बडी वजह यह रही है कि वहा धार्मिक पहचान के आधार पर बन पाकिस्तानी प्रभाव से मुकाबला करने की जरूरत समझी जाती है। इस क्षेत्र म भारतीय विदेश नीति पाकिस्तान के सब इस्लामी भाईचारे के बजाय अरबो के उपनिवेशवाद विरोधी सघर्षों और सब अरब भाईचारे तथा फिलीस्तीनी सघष को समथन देन की रही है।

(झ) सहारा के दक्षिणी पार अफ्रीकी दशो के उपनिवेशवाद विरोधी सघर्षों म भारत ने शुरू मे कोई भौतिक या नैतिक समथन नही दिया। लेकिन बाद मे इदिरा गाधी के शासनकाल के दौरान रूस की ओर झुकाव होने से भारत पश्चिम विरोधी सरकारो और जन आदोलनो को समथन देने लगा।

(ञ) लेटिन अमरिका 1947 उपरात भारतीय विदेश नीति मे ज्यादातर दूरवर्ती क्षेत्र ही बनाना रहा। हा इसके भारत के साथ कूटनीतिक और व्यापारिक सपक जरूर रहे। इसकी खास वजह यह है कि भारत इसे मुख्यतया अमेरिका का ही प्रभावक्षेत्र मानता रहा है। भारत इस सबध मे अमरिकी भावनाओ का कितना महत्व देता आया है, यह कास्त्रो द्वारा क्यूबा की यात्रा के निमत्रण के प्रति नेहरू के जवाब से जाहिर होता है (नेहरू न जवाब भेजा था कि 'मेरे पास तो अपने देश मे ही करने को बहुत काम पडा है)[9]।

(iii) पाकिस्तान और चीन के साथ भारत के सबध

(क) इन दोनो देशा के साथ सबध भारतीय विदेश नीति की कायसूची म निरतर पहले और दूसरे स्थान पर रहे हैं।

(ख) भारत पाक सबध भारतीय विदश नीति की धुरी है। 1947 के बटवारे न दोनो देशो के बीच गहरी कटुता छोडी थी। कश्मीर विवाद और उससे उपजे अनक युद्धा न पुरानी कटुता को पूरी तरह बरकरार रखा है। पाकिस्तान का कहना है कि भारत सयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान म कश्मीर मे जनमत सग्रह करवाने के 1948 मे किए अपन वादे स मुकर गया है। उधर, भारत का आरोप है कि पाकिस्तान सग्रह की तैयारियो के लिए सयुक्त राष्ट्र को दिए वचन का पूरा करन मे

है। हालांकि बटवारे से पैदा हुई कई पुरानी समस्याएँ—सयुक्त भारत की नकदी का बटवारा, शरणार्थियो की सपत्ति, सिंधु जल आदि—हल हो गई थी पर कुछ नई समस्याओ (यानी दोनो पक्षो द्वारा हथियार खरीदी, एटमी हथियार, दूसरे देशो के साथ सबध, व्यापार आदि) के साथ साथ रणनीतिक लिहाज से महत्वपूर्ण कश्मीर विवाद उनके आपसी सबधो को लगातार ग्रहण लगाए हुए है। भारतीय विदेश नीति मे पाकिस्तान को भारत के लिए एकमात्र तो नहीं, प्रमुख खतरा हमेशा माना गया है। उधर पाकिस्तान हमेशा यह समझता आया है कि भारत विभाजन की शर्तों का उल्लघन करके उसके टुकडे-टुकडे करने पर आमादा है। आपस की इन्ही शकाओ के चलते पाकिस्तान पश्चिमी देशो के साथ सैनिक गठजोड करने को प्रेरित हुआ जबकि भारत ने सैनिक लिहाज से रूसी खेमे से गठजोड कर लिया। इससे भारतीय उपमहाद्वीप मे भी शीतयुद्ध की शुरुआत हुई। क्रिया-प्रतिक्रिया के इस सिलसिले का नतीजा यह हुआ कि दोनो देशो का रक्षा खच बढ़ता गया और उनके आर्थिक विकास मे बाधा बन गया है। अभी तक दोनो देश तीन बार युद्ध कर चुके है जिनमे हरेक को भारी जानी और माली नुकसान हुआ है। मगर पाकिस्तान का नुकसान कहीं ज्यादा है। 1971 के युद्ध म उस अपनी आधी भूमि और आबादी से हाथ धोना पडा जिसका नतीजा उपमहाद्वीप म एक नया देश—बागलादेश बनने म निकला। दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग सघ (दक्षेस) की स्थापना उन्ह एक साझे आर्थिक मच पर लाने म सहायक भले ही हुई पर सुरक्षा सबधी उनकी धारणाओ मे रत्ती भर फक नही आया है। दोनो देश एक दूसरे से इस कदर आक्रात है कि वे किसी और चीज के बारे म सोच भी नही पाते।

(ग) भारत चीन सबध 1959 से लेकर भारत पाक सबधो के बाद दूसरे महत्वपूर्ण स्थान पर रहे हैं। दलाई लामा के भारत चले आने और दोनो देशो की सेनाओ के बीच गभीर सशस्त्र मुठभेडो के बाद से यही स्थिति चली आ रही है। ब्रिटिश शासन ने भारत को चीन के साथ लगी 2,500 मील लबी विवादास्पद सीमा विरासत म दी थी। तिब्बत मे अपने विशेष दावो को छोडते हुए भारत ने सीमा सबधी दावे को बनाए रखा, हालाकि चीन ब्रिटिश शासको द्वारा मानी जाने वाली भारतीय सीमा को मान्यता नही देता था। भारत और चीन के बीच 1954 की तिब्बत सधि के मौके पर किसी भी ने अपनी साझी सीमा के बारे मे कोई विवाद का पक्ष मुद्दा नही उठाया। लेकिन '56 से दोनो के बीच सीमा विवाद शुरू हो गए और कई बार दोनो पक्षो के सीमा रक्षको के बीच झडपें भी हुइ। जब भारत ने दलाई लामा की अगुआई वाली बगावत को राष्ट्रीय विद्रोह मानते हुए 59 मे उनके गुट को भारत मे शरण दी तो स्थिति और बिगड गई। 1959 मे चीन भारत सबधो के बारे मे एक श्वेतपत्र जारी किए जाने के बाद 1960 म तीन और श्वेत पुस्तको के अलावा 1961 मे एक लबी रिपोट प्रकाशित होने पर भारत म राष्ट्रीय चेतना का ज्वालामुखी फूट पडा। 1961 की रिपोट मे चीन भारत सीमा विवाद और सीमा झडपो के बारे मे तफसील दज थी। ससद मे चीन के प्रति भाषणो का लहजा तल्ख होने लगा। भारत सरकार सीमा सबधी अपने दावो पर जमी रही

और उसने यह कहकर बातचीत करने से इनकार कर दिया कि इसका फैसला तो अब युद्धभूमि में ही होगा। इस अड़ियल दृष्टिकोण से स्थिति बिगड़ने का ही अंदेशा था। 1960 में चाउ-एन-लाई भारत आए। बताया जाता है कि उन्होंने नेफा में भारत के दावे को मान लेने का प्रस्ताव रखा बशर्ते कि बदले में भारत अक्साई चिन में चीन के दावे को मान ले। यहाँ चीनियों ने तिब्बत और सिकियांग को जोड़ने वाली एक रणनीतिक सड़क का निर्माण कर लिया था। भारत सरकार ने यह प्रस्ताव नहीं माना। दोनों पक्षों का रवैया सख्त हो गया। नतीजतन 1962 में भारत चीन सीमा युद्ध हुआ। भारत हार गया। खासकर उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँची। चीनी सेनाएँ निश्चित समय के भीतर एक चौकी को छोड़कर कब्जे में लिए सारे क्षेत्र से पीछे हट गई। चीन सरकार ने बंदी बनाए गए सभी भारतीय सैनिकों को भारत सरकार के रजामंद होते ही लौटा दिया। अफ्रीका और एशिया के छह देशों की सरकारों ने कोलंबो में बैठक करके दोनों पक्षों के बीच सुलह वार्ता के लिए कुछ प्रस्ताव तैयार किए। लेकिन दोनों के अड़ियल रुख के कारण बातचीत शुरू नहीं हो सकी। भारत चीन संबंध कार्यदूत के स्तर तक ही रह गए। 1976 में आकर ही दोनों देश एक दूसरे के यहाँ राजदूत भेजने को सहमत हुए। 1979 में जनता सरकार के विदेश मंत्री ने पीकिंग की यात्रा की और संबंधों में आया ठहराव कुछ हद तक टूटा। 1980 वाले दशक से शुरू से भारत और चीन के बीच विवादास्पद सीमा के सवाल पर सरकारी स्तर की बात चीत के दौर चल पड़े। अभी तक बातचीत के आठ दौर हो चुके हैं। आने वाले महीनों में भारतीय प्रधानमंत्री पीकिंग की यात्रा पर जा रहे हैं।

4 हथियारों, विदेशी सहायता और देशों के बीच विवादों के प्रति भारत का रुख

(क) हथियारों के मामले में भारतीय विदेश नीति ने हमेशा निरस्त्रीकरण का रुख अपनाया लेकिन खुद भारत हर साल सेनाओं पर खर्च बढ़ाता आ रहा है।

(ख) संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति भारतीय विदेश नीति उसे शांति स्थापना करने वाली संस्था के रूप में मान्यता देती है। पर दूसरे देशों के साथ अपने विवादों में खुद भारत संयुक्त राष्ट्र के हस्तक्षेप के खिलाफ रहा है।

(ग) विदेशी सहायता के मामले में भारतीय विदेश नीति आर्थिक आत्म निर्भरता पर जोर देती है। मगर हर योजना के साथ भारत की विदेशी कर्जों पर निर्भरता बढ़ती गई है।

(घ) सुलह बातचीत के जरिए विभिन्न देशों के बीच विवाद सुलझाने का जहाँ तक संबंध है भारतीय विदेश नीति हर क्षेत्रीय विवाद में इसी सिद्धांत पर जोर देती है। लेकिन भारत चीन सीमा, कश्मीर आदि विवादों के प्रति यह रुख अपनाने को तैयार नहीं।

5 भारतीय विदेश नीति की उपलब्धि

पिछले चार दशकों में भारतीय विदेश नीति का मूल उद्देश्य दक्षिण एशिया म भारत के लिए प्रभुत्वकारी शक्ति वाला दर्जा हासिल करना रहा है। लेकिन यह मूल उद्देश्य अभी तक पूरा नहीं हो पाया है। यहा तक कि वह दक्षिण एशिया म किसी एक देश तक को मित्र बनाने मे नाकाम रही है। गुटनिरपेक्ष देशा से भारत का अलगाव ता 1962 के भारत चीन युद्ध के समय ही स्पष्ट हो गया था।

6 रक्षा नीति

(क) किसी देश की रक्षा नीति मूलत वहा की सरकार अथवा शासक दल की विदेश नीति के अनुरूप ही होती है।

(ख) भारतीय विदेश नीति क अनुरूप ही भारतीय रक्षा नीति का उद्देश्य भी देश को दक्षिण एशिया म प्रभुत्वकारी शक्ति बनाना और इस क्षेत्र के सभी देशो को भारत के प्रभावाधीन लाना रहा है।

(ग) (i) पहली बात तो यह कि भारतीय रक्षा नीति विदेश नीति के इस विश्व रणनीतिक मूल्याकन पर आधारित है कि 1960 और 1970 वाले दशको के दौरान दो महाशक्तिया अमरिका और रूस के बीच तनाव शथिल्य विश्व शाति या बहतर माहौल के रुझान का संकेत नही देता। इसके मुताबिक सामरिक शस्त्र परिसीमन सधि-1 (सारट 1) चूकि प्रक्षपको के आकार और गुणवत्ता वद्धि पर रोक लगाए बिना उनकी सख्या को ही सीमित करती है, इसलिए उसे निरस्त्रीकरण की दिशा मे कदम नही माना जा सकता, सार्ल्ट 2 ज्यादातर कुछ चुनिंदा और अत्यधनिक हथियारो पर असहनीय आर्थिक खच के कारण पदा होने वाली आपसी होड को सीमित करने के लिए दो महाशक्तिया का प्रयास मात्र है, अणु परिसीमन सधि दुनिया की सैन्य शक्तियो का सामरिक हथियारो पर एकाधिकार बनाए रखने का साधन है, 1987 की मध्यम अणु शस्त्र सधि हालाकि निरस्त्रीकरण की दिशा म एक कदम है पर इसके तहत दुनिया के महज 3 से 4 फीसदी अणु हथियार ही आते है और फिर इसस उन देशो के भारी भरकम रक्षा बजटो मे कमी आने के कोई आसार नही है। बहरहाल, थोडी नरमी के बावजूद तनाव शथिल्य का यह रुझान अभी अणु शस्त्रो क एकाधिकार और दो महाशक्तियो की प्रभुत्ववादी आकाक्षाओ को खत्म करने की कोई पर्याप्त गारटी नही माना जा सकता।

(ii) दूसरे, भारतीय रक्षा नीति विदेश नीति के इस क्षेत्रीय मूल्याकन पर आधारित है कि 1959 तक तो पाकिस्तान भारतीय सुरक्षा के लिए एकमात्र खतरा था और उसके बाद चीन प्रमुख खतरा बन गया है।

(घ) इस विश्व और क्षेत्रीय मूल्याकन के आधार पर भारतीय रक्षा नीति । जोर इस कदर मजबूत रक्षा शक्ति बनाना रहा है जो किसी भी समय अणु हथियार

बनाने और इस्तेमाल करने में सक्षम हो। यह बात भारतीय रक्षा बजट में निरंतर वृद्धि से स्पष्ट है। 1948 49 मे 167 5 करोड रु०[4] स बढकर यह खच 1988 89 मे 14,000 करोड रु० जा पहुचा यानी पिछले 40 साल मे इसमे 84 गुना वृद्धि हुई है। 1987 88 के लिए अनुमानित रक्षा खच ऊर्जा के तीनो क्षेत्रो (कायला बिजली और गैर पारपरिक ऊर्जा स्रोतो) मे कुल मिलाकर अनुमानित खच से करीब 5 गुना, ग्रामीण विकास से 6 गुना, शिक्षा से 11 गुना, परिवार कल्याण से 23 गुना, शहरी विकास से 39 गुना, जल ससाधनो से 59 गुना वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसधान से 73 गुना और विनान एव टैक्नालॉजी से 85 गुना ज्यादा था। यहा जिक्र की गई सभी मदो के तहत कुल मिलाकर आवटन रक्षा की मद के आधे से भी कम है।[5]

(ङ) रक्षा पर अपने साधनो से भी ज्यादा खच करते हुए भारत सरकार ने सभी अतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय मचा से दुनिया मे पूण निरस्त्रीकरण, सभी अणु शस्त्रो को तबाह करने सुरक्षा परिषद के पाच स्थायी सदस्या के रक्षा बजटा मे कटौती किए जाने तथा निरस्त्रीकरण से बचे पैसे को दुनिया के आर्थिक विकास मे लगाने की मागें उठाई हैं।

(च) इस रक्षा नीति के साथ साथ कश्मीर और भारत चीन सीमा विवादो के बने रहने से इस क्षेत्र मे हथियारो की होड निरतर बढी है तथा भारत सोवियत सघ के नजदीक पहुचा है।

(छ) 1971 के भारत पाक युद्ध मे पाकिस्तान के टूटने से उसकी तरफ का खतरा अपक्षतया कम हो गया है। उधर भारत चीन सबधो मे धीरे धीरे मगर निरतर सुधार से दोनो देशो के बीच तनाव घटा है। लेकिन विश्व और क्षेत्रीय तनावो म कमी होन के बावजूद अभी इस बात का कोई सकेत नही है कि भारत की विश्व अथवा क्षेत्रीय रणनीति का चीन या पाकिस्तान की रणनीति से तालमेल बढेगा। दक्षिण एशिया मे क्षेत्रीय प्रभुत्व हासिल करने के लिए भारत की महत्वाकाक्षा पहले से तेज हो गइ है (इसका सबूत श्रीलका और मालदीव मैं भारतीय सेना की हाल ही की दखलदाजी से मिलता है)। मगर न तो पाकिस्तान और न बाग्लादेश, नेपाल आदि भारतीय प्रभुत्व मानने को तैयार हैं जबकि अणु शक्ति होने के कारण चीन भी महाशक्ति बनने की आकाक्षा रखता है।

7 भारतीय कूटनीति सह-रक्षा नीति द्वारा बटोरी गई भारी कीमत

उपर दिए विवरण से पता चलता है कि भारतीय कूटनीति सह रक्षा नीति नीति कोई फलदायक प्रक्रिया साबित नही हुई है। सबसे पहली बात यह कि इससे भारत की दुष्ट छवि बनी है यानी वह कहता कुछ है और करता कुछ। दूसरे इससे भारत अपने पडोसियो से अलग थलग पडा है। तीसर, यह उपमहाद्व हथियारो की होड रोकने और 1947 के बाद भारत के अपन दो पडोसियो युद्ध टालने मे नाकाम रही है। भारत और पाकिस्तान के बीच मुख्य तौर

सवाल पर लडे गए तीन युद्ध (1948, 1965 और 1971) दोनो देशो के लिए बहुत महगे पडे है। कश्मीर सवाल पर दोनो देशो के बीच अगर कोई समझौता हुआ होता या दोनो म महासघ बनाने पर सहमति हुई होती अथवा उन्होन युद्ध न करने की सधि पर हस्ताक्षर किए होत तो कोई भारत-पाक युद्ध न होता। ये पुरान तक कि 1947 के बटवारे से साम्प्रदायिकता पर प्रहार होगा अथवा भारत म कश्मीर के विलय से धमनिरपेक्षता मजबूत होगी, पूरी तरह निराधार साबित हुए हैं। भारत म साम्प्रदायिकता पर प्रहार पाकिस्तान क साथ मुठभेड नही बल्कि उसके प्रति दोस्ती और देश मे धम और राजनीति को अलग करने की नीति अपनाने से होगा। 1962 का चीन भारत युद्ध भी पूरी तरह गैर जरूरी था और उस शायद टाला जा सकता था। अगर भारतीय कूटनीति सह रक्षा नीति का रुख अधिक लचीला होता तो भारत और चीन शायद यह युद्ध न करते। कुल मिलाकर इस नीति की वजह से भारत को जानी व माली दाना तरह से भारी कीमत चुकानी पडी है। इसका कोई सरकारी विवरण उपलब्ध नही। पर मोटे अनुमान के अनुसार इन चार युद्धो मे भारतीय सेना के 13,000 जवान खेत रहे और 30,000 घायल हुए।[6] दूसरी तरफ का जानी नुकसान भी कमोबेश इतना ही रहा होगा। माली लिहाज से भी हथियारो की होड और युद्धों मे भारत को अरबो रुपए फूकन पड।

सदभ

1 इस सिलसिले म नेहरू ने एक बार कहा था, 'भारत पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिण-पूव एशिया की घुरी है।' (नेहरू के चुनिदा भाषण, सितबर 1946 अप्रैल 1961 नई दिल्ली 1961 पृ० 2-5)। उन्होन आगे भी कहा था, भारत एशिया मे अति असाधारण स्थिति म है और इसका इतिहास बहुत हद तक भौगोलिक तत्वो और दूसर तत्वो से प्रभावित रहा है। एशिया मे चाहे जिस समस्या को भी लें भारत किसी न किसी रूप म सामने आता ही है। उसकी अपनी वास्तविक या सभावित क्षमता और ससाधनो के कारण भी उपेक्षा नही की जा सकती।" (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, 1949 53, प्रकाशन विभाग, दिल्ली 1953, खड I पृ० 316)।

2 मनसघ, ब्रिटिश राष्ट्रमडल के दस्तावजो का सर्वेक्षण, 1952 62, पृ० 459

3 हिंदू, 29 9 1960

4 हिंदुस्तान टाइम्स, 11 2 88, पृ० 11

5 वही, 14 2 88, पृ० 13

6 कश्मीर मे 1948 के भारत-पाक युद्ध मे जम्मू कश्मीर राज्य सेना के करीब 1,263 जवान मारे गए ('द इडियन मिलेट्री रिवाइवल', जी० डी० बख्शी, लासर इटरनेशनल, नई दिल्ली 1987, प० 66)। इसके अलावा भारतीय सेना के भी करीब 2,000 जवान खेत रहे।

1962 के चीन भारत सीमा युद्ध म करीब 3,200 भारतीय सैनिक मारे गए और 6,000 से अधिक घायल हुए ('इडियाज़ चाइना वार', मेक्सवैल)।

1965 के भारत पाक युद्ध मे भारतीय सेना के 2,226 जवान मारे गए और 7,870 घायल हुए (इडिया पाकिस्तान वार 1965' हरिराम, हरियाणा प्रकाशन, दिल्ली 1968, प० 20)। लदन के सामरिक अध्ययन सस्थान का अनुमान है कि भारत के मृत और घायल सैनिको की सख्या 4,000 से 6,000 के बीच रही।

1971 के भारत पाक युद्ध मे भारतीय सेना के करीब 3 000 जवान मारे गए और लगभग 8000 घायल हुए ('डिसमेबरमेंट आफ पाकिस्तान', पृ० 239)।

अध्याय सात
1945 के वाद की दुनिया

1 देशों के बीच बढ़ती अतरनिभरता

1945 के वाद की दुनिया की खासियत यह है कि देश सागठनिक, वचारिक, भौतिक आदि विभिन्न क्षेत्रो मे अधिकाधिक अतरनिभर होत जा रहे हैं। अतरनिभरता का मतलव आपसी निभरता है जवकि निभरता किसी वाहरी ताकत द्वारा निर्धारित स्थिति का भान कराती है। देशो की अतरनिभरता विकास की वह प्रक्रिया है जिसे कदाचित कोई व्यक्ति या राष्ट्र राज्य नियोजित नही करता। इसकी शुरुआत अनेक व्यक्तियो और राष्ट्रो के सैकडो आवारो स विकसित हुए नए टक्नोलाजिकल रचना तत्र के उदय से हुई है। 1945 के वाद देशों की अतरनिभरता की प्रक्रिया निम्न तथ्यो से स्पप्ट है।

(क) नए विश्व सगठनों का उदय

सबसे पहले तो यह विभिन्न श्रेणिया के विश्व सगठनो के उदय से स्पप्ट है। ये सगठन हैं—(1) सयुक्त राष्ट्र सघ जो विश्व मच के मुख्य पात्रो यानी राष्ट्र राज्यों की राष्ट्रीय प्रभुसत्ता के आधार पर गठित है और जिसकी स्थिति आने वाले कुछ वक्त तक ऐसी ही रहेगी, 1945 म विद्यमान 51 राज्यो द्वारा स्थापित इस सस्था की सदस्य सख्या अव 159 तक पहुच गई है, (ii) सयुक्त राष्ट्र की विभिन्न एजेंसिया जैसे यूनेस्को एफएओ, यूनिडा, अक्टाड आदि, (iii) आधिकारिक अतरराष्ट्रीय वित्त सस्थान जसे विश्व बैंक, अतरराष्ट्रीय मुद्रा कोप आदि, (iv) आधिकारिक अतर राष्ट्रीय व्यापार सगठन गैट, (v) सरकारी और गैर-सरकारी अतरराष्ट्रीय बको सहित निजी बहुराष्ट्रीय और पार राष्ट्रीय निगम (शेल, एक्सान, आईवीएम आदि) तथा राजकीय स्वामित्व वाली कपनिया, (vi) विभिन्न अ तरराष्ट्रीय मजदूर सगठन जसे अ तरराष्ट्रीय मजदूर महासघ अ तरराष्ट्रीय वायु परिवहन सघ अ तरराष्ट्रीय डाक सघ आदि, (vii) अधिराष्ट्रीय (अथवा क्षेत्रीय) समूह जैसे यूरोपीय आर्थिक समुदाय पारस्परिक आर्थिक सहायता परिपद लेटिन अमेरिकी देशो का सगठन, अफ्रीकी एकता सगठन, एसियान, दक्षेस आदि (viii) अ तरराष्ट्रीय सगठन' (ब्रुसेल्स 1977) नामक वार्पिकी के 16वें सस्करण मे करीव 300 सरकारी और 4,600 से अधिक गर सरकारी अ तरराष्ट्रीय सगठनो की सूची दज है। इनमे 250 सगठन विज्ञान, 370 स्वास्थ्य, सफाई और चिकित्सा' और 240 टेक्नोलाजी के क्षेत्र से सवधित हैं।

(ख) राष्ट्रीय समस्याओ का सार्वभौमिकरण

दूसरे, यह विभिन्न भौतिक समस्याओं के सार्वभौमिकरण से स्पष्ट है। ये समस्याए है पर्यावरण प्रदूषण, अणु युद्ध और हथियार, समुद्र और अ तरिक्ष की खोज, दुनिया की बढ़ती आबादी और उसकी खाद्यान्न जरूरतें, कच्चे माल और ऊर्जा के घटते स्रोत, बढ़ती गरीबी, अमीर और गरीब लोगो व देशो मे बढ़ती खाई, दुनिया भर म मुद्रा-स्फीति, बेरोजगारी, मदी, मुद्रा व्यवस्था आदि। ये समस्याए राष्ट्रीय सीमाओ को पार कर गई हैं। सोवियत सघ म चेरनोबिल अणु दुघटना ने स्कैंडेनेवियाई देशो को भी प्रभावित किया। अगर ओजोन की परत को नुकसान पहुचा तो इसका प्रभाव समाजवादी और गैर समाजवादी देशो पर समान रूप से पड़ेगा। अगर प्राकृतिक स्रोत खत्म हो जाते हैं या दुनिया की आबादी पर काबू नही पाया जाता तो इसका असर विकसित और अल्पविकसित दोनो किस्म के देशो पर पड़े बिना नही रहेगा। विश्वव्यापी प्रक्रियाए हालांकि पिछले युगो म भी रही हैं (मसलन निकट पूर्व मे कभी उपजाऊ रही भूमि का रेगिस्तान बनना, भूमध्य सागर के इद गिद जगलो का विनाश होना, सस्कृति का अनियोजित प्रसार होना आदि) पर उनकी सख्या बहुत कम रही है और उन्हें परिपक्व होने मे कई सदिया लग गइ। चालू सदी म विश्व समस्याए बहुत तेजी से बढ़ी हैं और उनकी परिपक्वता अवधि कुछ दशको तक सीमित रह गई है। अ तरनिभरता से पहले के दौर म विश्व समस्याए चूकि कभी कभार ही उठा करती थी इसलिए उनके बारे मे कम ही सामाजिक ज्ञान उपलब्ध है। जितनी जल्दी हम उनका ज्ञान हासिल कर लें, उतना ही इस दुनिया के लिए बेहतर है।

(ग) राष्ट्रीय आर्थिक मॉडलो की बढ़ती अप्रासगिकता

तीसरे, यह राष्ट्रीय आर्थिक मॉडलो—राज्य नियोजित तत्र (सोवियत मार्क्सवादी माडल), निजी बाजार तत्र (पश्चिमी उदारवादी माडल) और मिश्रित तत्र—की बढती अप्रासगिकता से स्पष्ट है। इन सभी माडलो को अधिकाधिक आर्थिक कठिनाइयो का सामना है। सोवियत सघ मे पूजी/उत्पादन के बढ़त अनुपात के साथ साथ घटती विकास दर और आवश्यक वस्तुओ की कमी पश्चिमी जगत मे(जिसका अगुआ अमेरिका अब सबसे बडा अतरराष्ट्रीय कजदाता बन गया है) मुद्रा एव वित्तीय सकट के साथ साथ कम आर्थिक विकास दर तथा अल्पविकसित देशो मे कज के बढ़ते बोझ के साथ साथ मामूली आर्थिक विकास-दर और खाद्यान्न की कमी इन्ही कठिनाइयो की अभिव्यक्ति है। राष्ट्रीय आर्थिक माडलो अथवा एक ही राष्ट्र के कल्याण का युग अब बीत गया है। मौजूदा अ तरराष्ट्रीय व्यवस्था के मुकाबले राष्ट्रीय आर्थिक माडलो की अप्रासगिकता इस उदाहरण से समझी जा सकती है कि पारिवारिक उद्यम से ज्वाइट स्टाक कपनिया म विस्तार पाने के बाद हमेशा एक नए किस्म के प्रबधन की जरूरत होती है।

(घ) सत्ता के नए मापदड का उदय

चौथे, यह मौजूदा दुनिया मे सत्ता के नए मापदड के उदय से स्पष्ट है। पुरानी दुनिया मे (मानव समाज की शुरुआत से लकर राष्ट्र-राज्य तक) सभी परपरागत धारणाए (यानी कुटुबीय, कबीलाई, जातिवादी, धार्मिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय) जहाँ प्रभुत्व/अधीनता के सबधो से प्रलक्षित थी, वही मौजूदा दुनिया म यह सबध तेजी से बदल रहे हैं। अब सबसे ताकतवर इकाई भी कमजोर पर अपनी इच्छा लादने मे कम कारगर होती जा रही है। सर्वोच्च सैन्य और आर्थिक ताकत वाला अमेरिका भी उत्तर कोरिया, दक्षिण वियतनाम, निकारागुआ आदि से निपटन का कोई रास्ता नही निकाल पाया। यहा तक कि ईरान मे अपने दूतावास पर कब्जे और वहा कमचारियो का बदी बना लिए जाने पर भी वह बबस दिखा। उधर, महाशक्ति होने के बावजूद सोवियत सघ अफगानिस्तान म आठ साल कब्जा जमाए रखने के दौरान विरोधी पक्ष का वश म नही कर पाया। जाहिर है कोई भी महाशक्ति अब दूसरो पर अपनी इच्छा नही थोप सकती। दो महाशक्तियो म केंद्रित दुनिया की जगह सामूहिक केंद्रित दुनिया ले रही है। दुनिया ज्यो ज्यो अतरनिभर होती जाएगी, प्रभुत्वकारी देश ताकत खोते चले जाएगे और अधीनस्थ देशो को सौदेबाजी की अधिकाधिक ताकत हासिल होती जाएगी।

(ड) राष्ट्र राज्य का घटता प्राधिकार

पाचवें, यह अतरराष्ट्रीय सगठनो को काबू रखने मे राष्ट्र-राज्यो क घटते प्राधिकार से स्पष्ट है। सयुक्त राष्ट्र कोष म सबसे ज्यादा योगदान दने वाला अमेरिका सयुक्त राष्ट या उसकी किसी एजेंसी को कब्जे मे नही कर पाया है। अल्पविकसित देश भी पार राष्ट्रीय निगमो और बहुराष्ट्रीय निगमो पर काबू पाना अधिकाधिक दुश्वार पा रहे है। कुछ मामलो मे तो ये निगम आर्थिक तौर पर बहुत स अल्पविकसित राज्यो के मुकाबले ज्यादा ताकतवर हैं।

2 घटनाक्रम को समझने मे मुश्किल

अनुभव बताता है कि ज्ञात घटनाक्रम का नए घटनाक्रम के मुकाबले आसानी से पहचाना जा सकता है। इस तरह राष्ट्रो क्षेत्रो, धार्मिक समुदायो, जातियो, जन जातियो कुलो आदि की समस्याओ को कम परिचित विश्व समस्याओ के मुकाबले आसानी से समझा जा सकता है। अनुभव यह भी बताता है कि जब नई प्रक्रिया सामने आती है तो मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति उसे पारपरिक तरीके से निबटाने की होती है। व्यक्ति और राष्ट्र राज्य आज विश्व समस्याओ के बारे मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाते हैं जबकि उनका तकसगत हल दुनिया की सामूहिक कोशिशो से ही हो

सकता है। मसलन, सामुद्रिक साधनो के इस्तेमाल के लिए अगर किसी साझी अतरराष्ट्रीय योजना पर सहमति होती है तो इससे दुनिया भर म भूख की समस्या हल हो सकती है। इसी तरह, सामूहिक अ तरराष्ट्रीय अतरिक्ष शोध कायक्रम से हमे अकेले अकेले राष्ट्रीय प्रयासो के मुकाबले ज्यादा लाभ मिल सकता है। अनुभव आगे बताता है कि अगर किसी समस्या की ओर उचित समय पर ध्यान न दिया जाए तो उसमे तब्दीलिया आ जाती है जिससे अक्सर उसे निबटाना मुश्किल हो जाता है और कई बार तो वह बेकाबू हो जाती है। खतरे क स्तर तक पहुच रही बहुत सी विश्व समस्याओ (जैसे प्रदूषण) का हल करना अभी उतना मुश्किल नही पर वक्त गुजरने के साथ-साथ यह टेढी खीर होती जाएगी।

3 सावभौमिकता के प्रति मनुष्य की पिछड़ी अनुक्रिया

यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि जहा राष्ट्रो की राजनतिक, आर्थिक और सास्कृतिक अतरनिभरता अधिक स्पष्ट रूप से सामने आई है, वही विभिन्न देशो के बीच नीतियो का तद्नुरूप विकास नही हुआ है। मसलन, दोनो महाशक्तियो अमरिका और सोवियत सघ ने 1987 मे ही देशो की अतरनिभरता का एहसास किया, हालाकि अपने अपने प्रभाव क्षेत्रो मे वे अपने मित्र देशो को आर्थिक और सैनिक गुटो मे सगठित करके इस पर पहले स अमल करते आ रहे हैं। ब्रेटन वुडस सधि और माशल योजना एक तरह से सावभौमिकता क प्रति अमरिका की अनुक्रियाए ही थी। इसी प्रकार, कोमिनफाम और कोमिकॉन भी अतरराष्ट्रीयवाद के प्रति सोवियत सघ की अनुक्रियाए थी। लेकिन अपनी अपनी राष्ट्रीय दिशाओ (एक देश मे समाजवाद की सोवियत माक्सवादी दिशा तथा राष्ट्रीय बाजार और राष्ट्रीय ससदीय लोकतत्र की अमेरिकी उदारपथी दिशा) के कारण उनम हर कोई अपने प्रभाव क्षेत्र क अ दर और बाहर अपने ही प्रभुत्व के तहत सावभौमिकता स्थापित करने के प्रयास करता आ रहा है। दोनो महाशक्तिया के आपसी सबध दूसरे विश्वयुद्ध के बाद ही तनावपूण हुए हैं। शीतयुद्ध की यह अवस्था, जिसमे कभी तनाव घट भी जाता था (जैसे 1958 मे ख्रुश्चोव की अमेरिका यात्रा), 1962 मे क्यूबा पर उठे सकट तक बनी रही। इसके बाद भुरभुरे तनाव शैथिल्य का दौर चला जिसम कभी शीतयुद्ध के मुद्दे उभरते रहे (जैसे अमेरिका द्वारा 1962 75 के दौरान वियतनाम पर और 1970 75 के दौरान कबोडिया पर सशस्त्र आक्रमण, 1983 म ग्रेनाडा पर हमला और 1986 म लीबिया पर बमबारी तथा सोवियत सघ द्वारा 1986 मे चेकोस्लोवाकिया म हस्तक्षेप, 1976 मे अगोला मे क्यूबाई सेना को झोकना, 1978 मे कबाडिया पर वियतनामी सशस्त्र आक्रमण का समथन तथा 1979 मे अफगानिस्तान म सशस्त्र हस्तक्षेप) और कभी तनाव मे शिथिलता सामने आई (जिसका इजहार (i) 1963 मे आशिक अणु परीक्षण प्रतिबध सधि, (ii) 1968 मे अणु भडार न करने की सधि, (iii) 1971 मे साल्ट 1 सधि, (iv) 1975 म हेलसिंकी सधि तथा (v) 1978 म साल्ट-2 सधि

से होता है)। 1987 म पहली बार दोनो महाशक्तियो को एहसास हुआ कि न सिर्फ राष्ट्र राज्य बल्कि वे खुद भी एक दूसरे पर अतरनिभर हो गए हैं। अमेरिका और सोवियत सघ द्वारा अतरनिभरता की बात मान लिए जाने का मतलब है कि उनम किसी का भी दूसरे के बिना वजूद नही रह सकता। चीन तो अमली तौर पर 1978 स ही इसी आधार पर अमेरिका के साथ सबध बनाए हुए है। सैद्धातिक तौर पर इसका मतलब है कि रूस और चीन इन मार्क्सवादी दृष्टिकोणो को छोड चुके है जिनके मुताबिक सर्वहारा क्राति द्वारा अतत कम्युनिज्म की विजय होगी, वग सघष द्वारा पूजीवाद का तख्ता पलट दिया जाएगा, साम्राज्यवाद (यानी अमेरिका और पश्चिमी जगत) मृत्युशैया पर पडा क्षयग्रस्त पूंजीवाद है, पूजीवाद समाजवाद को और समाजवाद पूंजीवाद को खत्म करके ही जिंदा रह सकता है, शाति पूण प्रतियोगिता और सहअस्तित्व का जमाना आ गया है आदि आदि। यह बात दीगर है कि रूस और चीन फिलहाल कथनी म इस तथ्य को न मानें। सैद्धातिक तौर पर इसका यह मतलब भी है कि अमेरिका अथवा पश्चिमी जगत न कम्युनिस्ट राज्यो को तानाशाही राज्य मानने का दृष्टिकोण (रूस को दुष्ट साम्राज्य मानने वाला रगन का दृष्टिकोण) छोड दिया है तथा उन्ह उदारवादी राज्यो के रूप म स्वीकार कर लिया है। जाहिर है यह मूल अवधारणात्मक परिवतन है जिसस अमरिका और सोवियत सघ के बीच सबध बढने से दुनिया म सबधो का आधार बदल गया है। इसस दुनिया में बाकी सभी सबधो यानी विभिन्न सैनिक गुटो (मसलन नाटो, वार्सा आदि) के बीच और हरेक गुट के भीतर, एक तरफ दो महाशक्तियो और दूसरी तरफ गुट निरपेक्ष देशो के बीच, खुद गुटनिरपेक्ष दशो के अपने बीच, एक या दूसरी महाशक्ति से जुडे विभिन्न शत्रु देशो (मसलन भारत और चीन) के बीच सबधो पर भी असर पडने की सभावना है।

4 सावभौमिकता के देर बोध से मानवीय उद्देश्य को पहुचती हानि

(क) सामाजिक यथाथ को समझने मे देरी के कारण मनुष्यजाति विश्व मुद्रा-स्फीति, बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार आदि के रूप म पहले ही भारी कीमत चुका चुकी है। पहले विश्वयुद्ध के बाद अगर हमने उचित अनुक्रिया दिखाई होती तो दूसरा विश्वयुद्ध टल सकता था। यदि 1920 के दशक मे तनाव शथिल्य की प्रतीक 'लोकार्नो की भावना वाली सधियो पर अमल किया जाता, जिनम तब मौजूद विश्व समस्याओ क प्रति सामूहिक रुख अख्तियार करने पर जोर दिया गया था, तो 1930 के दशक की आर्थिक मदी का परिणाम इतना भयकर न होता। इसी का नतीजा था कि जमनी म नाजीवाद और जापान म सैन्यवाद जोर पकड गया जबकि बाकी पश्चिमी राज्यो मे अकमण्यता हावी हो गई। अगर वैसी ही मदी आज आ गई तो इसकी कीमत चुकाना असह्य हो जाएगा क्योंकि विश्व अथव्यवस्था अब ज्यादा व्यापक हो गई है। जितनी जल्दी हम अतरनिभरता की वास्तविकता को समझ लेंगे, मानवजाति के

लिए उतना ही बेहतर होगा ।

(ख) सावभौमिकता के प्रति उचित अनुक्रिया आज मानवजाति की पहली जरूरत है। दो महाशक्तियो की अनुक्रिया अगर दूसरे देशो के तालमेल से और सबसे बडी बात यह कि सचेत विश्व जनमत की निगरानी मे सपन्न नही होती तो वह गलत दिशा में जा सकती है। ऐसी सूरत मे वह दुनिया पर प्रभुत्व जमाने के लिए महाशक्तियो के साझे उद्यम में बदल सकती है या फिर नई उभरती आर्थिक महाशक्ति जापान के खिलाफ दोनो महाशक्तियो का सयुक्त मार्चा भी खडा हो सकता है।

5 विश्व लोकतांत्रिक राज्य ही उचित अनुक्रिया

(क) हमारी राय मे सावभौमिकता के प्रति उचित अनुक्रिया यही हो सकती है कि विश्व समुदाय अ तरराष्ट्रीय लोकतत्र का गठन कर जिसम विश्व लोकतान्त्रिक राज्य के तहत राष्ट्र राज्य गौण इकाइया हो। विश्व लोकतान्त्रिक राज्य दुनिया के लोगो और छोटे राष्ट्रो के हितो की रक्षा की खातिर दो ससदीय सदनो से गठित होगा जिनके अधिकार बराबर होगे। एक निचला सदन जो सीधे लोगो द्वारा (जनसख्या के आधार पर) चुने गए प्रतिनिधियो से गठित होगा और दूसरा ऊपरी सदन जो राष्ट्र-राज्यो की ससदो द्वारा चुने गए प्रतिनिधियो से गठित होगा जिसमे छोटे या बडे हर राष्ट्र राज्य के बराबर प्रतिनिधि होग। हर क्षेत्र के मतदाताओ को किसी भी समय अपने निर्वाचित प्रतिनिधि को वापस बुलाने का अधिकार होगा। विश्व लोकतान्त्रिक राज्य और उसकी विभिन्न एजेंसियो का मुख्य काम निचली प्रशासनिक इकाइयो से लेकर राज्य और अ तरराष्ट्रीय स्तर तक राजनैतिक, आर्थिक व सास्कृतिक प्रक्रियाओ पर जनसमुदाय का लोकतान्त्रिक नियत्रण कायम करना होगा।

(ख) विश्व लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना से अधिक न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था वजूद मे आएगी। मौजूदा सामाजिक व्यवस्था मे तो विश्व की 6 फीसदी जनसख्या वाले अमेरिका म दुनिया की सालाना ऊर्जा और चुनिंदा खनिजो की 30 फीसदी खपत[1] के साथ साथ दुनिया का 30 फीसदी उत्पादन भी होता है। उधर, विश्व की 7 फीसदी जनसख्या वाले सोवियत सघ मे दुनिया का करीब 20 फीसदी उत्पादन होता है और लगभग इतनी ही खपत होती है। इस व्यवस्था के तहत अमरिका उत्तरोत्तर भारी घाटे के बजट लाकर विश्व अथव्यवस्था को तहस नहस करता है जबकि सोवियत सघ अपने विशाल माहीगिरी बेडों के जरिए दुनिया के मछली ससाधनो को नुकसान पहुचाता है। इसी व्यवस्था में पूजी लगान के अधिकार बहुराष्ट्रीय अथवा राज्य निगमो के हाथो मे सुरक्षित है जबकि राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक मामलो मे लोगो की राय कोई मायने नही रखती।

(ग) इस अ तरनिर्भर ससार म भारत दक्षिण एशिया म अपनी क्षेत्रीय प्रभुत्ववादी नीति पर चलकर अच्छे पडोसियो जसे सबधो मे बाधा डाल रहा है और इस तरह सावभौमिकरण की प्रक्रिया मे रोडे अटका रहा है।

सदभ

1 एड्रयू एम० स्कॉट, 'द डाइनैमिक्स ऑफ इटरडिपेंडेंस', नॉथ कैरोलिना यूनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिका 1982, पृ० 40

अध्याय आठ

भारत के आधुनिकीकरण की व्यापक योजना और राष्ट्रीय विकल्प बनाने की नीति

अभी तक हमने इस सवाल पर गौर किया है कि पिछले 40 वर्षों मे क्या हुआ और क्यो हुआ। हमारे अध्ययन का निचोड यह है कि पिछले चार दशको से भारतीय राष्ट्र राज्य और उसकी एक पार्टी के प्रभुत्व वाली सरकार जो घटिया राजनैतिक, आर्थिक व सास्कृतिक कारनामे अजाम देती आ रही है, उसके लिए भारतीय जनता को भारी जानी व माली कीमत चुकानी पडी है। इसका मतलब यह है कि भारतीय जनता इन दो सामाजिक तत्वो का सही समाधान ढूढे। इनमे 1947 उपरात भारतीय राष्ट्र राज्य दीघकालिक सामाजिक तत्व और उसकी एक पार्टी के प्रभुत्व वाली सरकार अल्पकालिक सामाजिक तत्व है। दीघकालिक तत्व के समाधान के लिए यह जरूरी है कि भारतीय राज्यतत्र, अथव्यवस्था, सस्कृति और कूटनीति सह रक्षा नीति के आधुनिकीकरण की व्यापक योजना तैयार की जाए जबकि अल्पकालिक तत्व के समाधान के लिए सत्तारूढ काग्रेस इ का राष्ट्रीय विकल्प बनाने की नीति तैयार करना जरूरी है। व्यापक योजना और राष्ट्रीय विकल्प की नीति को लोगो म लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए।

भारत के आधुनिकीकरण की व्यापक योजना

1 इसका मूल लक्ष्य, निदेशक सिद्धात और कायशली

(क) इस व्यापक योजना का मूल लक्ष्य खास तौर पर भारतीय जनता (सामूहिक और व्यक्तिगत दानो रूप से) और अमूमन दुनिया के लोगो की वचारिक और भौतिक लिहाज से सामाजिक उन्नति करना है। मतलब यह कि हमशा सामाजिक पूंजी (यानी टेक्नोलाजी और मनुष्यजाति की रचना अथवा प्रकृति और मनुष्य) का विकास करना तथा हर कही और हर समय इसके दो पक्षों क बीच अनुरूपता बरकरार रखना, उस भग न होन दना।

(ख) इस व्यापक योजना का निदेशक सिद्धात (जो देशो की अतरनिभरता के हमारे युग की खासियत स निकलता है) अतरराष्ट्रीय लोकतत्र की अभिधारणा है। यह अभिधारणा एक ऐसा विश्व लाकतात्रिक राज्य स्थापित करन की पक्षधर है जिसम राष्ट्र-राज्य उसकी गौण इकाइया हों तथा जो छोटे या बडे राज्यो की समानता और सभी सामाजिक प्रक्रियाओ पर जनता के लोकतात्रिक नियत्रण क जुडवा असूलो पर

आधारित हो—यानी निचली प्रशासनिक इकाइयों से लेकर राष्ट्र-राज्य और अतर राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक राज्य के स्तर तक राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक प्रक्रियाओ पर जनता का नियत्रण हो। उपरोक्त मूल लक्ष्य की पूर्ति के लिए आज मनुष्यजाति की सबसे उचित व्यवस्था यही हो सकती है। इसका मतलब है कि हमेशा अतरराष्ट्रीय लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण अख्तियार करना अथवा सामाजिक समस्याओ के प्रति अतर-राष्ट्रीयवादी लोकतान्त्रिक दिशा अपनाना यानी प्रत्येक सामाजिक गतिविधि म समूची जनता को शामिल करना। वजह यह है कि मौजूदा दौर मे सामाजिक समस्याए राष्ट्र-वादी दृष्टिकोण से न तो सही तौर पर समझी जा सकती है और न ही कारगर ढग से हल की जा सकती है। क्योंकि यह दृष्टिकोण दुनिया की समूची जनता को नही जोड सकता।

(ग) इस व्यापक योजना की कार्यशैली हमेशा उक्त मूल लक्ष्य और निदेशक सिद्धात को ध्यान म रखकर उन्ह ठोस हालात मे लागू करना और इस तरह कथनी व करनी की रूपरेखा तैयार करना है।

2 अतरराष्ट्रीय क्षेत्र मे

निदेशक सिद्धात के अनुरूप इस योजना के तहत भारत समेत विश्व जनमत को गोलबद करने क लिए जहा कही और जब कभी सभव हो समान विचारो वाली दूसरी ताकतो के साथ मिलकर नीचे बताए विश्वव्यापी पग उठाना वाछित है।

(i) जगल उगाकर तथा वायु जल, भूमि आदि के प्रदूषण की रोकथाम करके पृथ्वी के पर्यावरण की रक्षा की जाए।

(ii) विश्व शाति बनाए रखी जाए और सामूहिक सुरक्षा की एक ऐसी व्यवस्था कायम हो जिसके तहत सभी देश शातिपूर्ण वातावरण मे रह सकें।

(iii) विश्व लोकतान्त्रिक राज्य की स्थापना की जाए (विवरण के लिए देखें ऊपर पैरा ख)।

(iv) सुरक्षा परिषद के पाँच स्थायी सदस्यो को मिले वीटो अधिकार खत्म हो और इस तरह सयुक्त राष्ट्र और दूसरी अतरराष्ट्रीय सस्थाओ मे छोटे-बडे सभी राष्ट्र राज्यो को बराबरी का दर्जा मिले।

(v) सभी प्रकार के प्रभुत्व और खासकर दो महाशक्तियो के प्रभुत्व का विरोध तथा प्रभुत्ववाद विरोधी सभी आदोलनो का समर्थन किया जाए।

(vi) सयुक्त राष्ट्र सघ की निगरानी म सभी प्रकार के घातक हथियारो खासकर एटमी और रासायनिक हथियारो के पूर्ण निरस्त्रीकरण की मुहिम चलाई जाए तथा सभी प्रकार की सैनिक सधियो खासकर नाटो व वार्सा सधियो को रद्द करने और दूसरे देशो से सभी सैनिक अड्डे खत्म करने और वहा स विदेशी सेनाए वापस बुलाने के साथ साथ दुनिया म जहा कही मुमकिन हो शाति क्षेत्र और अणु मुक्त क्षेत्र स्थापित करने की माग उठाई जाए।

(vii) अतरिक्ष मे सभी प्रकार की सैनिक गतिविधियो का निषेध हो और सयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान म एक विश्व अतरिक्ष सस्था कायम हो।

(viii) सभी राज्य युद्ध प्रचार पर पाबदी लगाए तथा सयुक्त राष्ट्र की निगरानी मे एक साथ अपने अपने सैन्य बजटो और सशस्त्र सेनाओ को भग करें।

(ix) विभिन्न राष्ट्र-राज्यो के बीच मौजूद सभी विवादो का शातिपूर्ण निपटारा हो तथा राज्यो की प्रभुसत्ता व क्षेत्रीय अखडता, अनाक्रमण, राज्यो के अदरूनी मामलो मे हस्तक्षेप, समानता व पारस्परिक लाभ और शातिपूर्ण सहअस्तित्व के आधार पर उनके बीच दोस्ताना सबध स्थापित हो।

(x) विवादास्पद इलाको के लिए सयुक्त राष्ट्र की स्थायी शाति सेना और खतरनाक सामुद्रिक क्षेत्रो के लिए सयुक्त राष्ट्र की नौसेना स्थापित हो।

(xi) विश्व न्यायालय के फैसले (जिनकी इस समय महज परामर्शी हैसियत है) सयुक्त राष्ट्र के सदस्यो के लिए बाध्यकारी हो।

(xii) दुनिया भर म मानवाधिकारो का परचम बुलद हो।

(xiii) हरेक देश के लिए समान दर्जे के आधार पर दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग परिषद के सदस्य राज्यो का महासघ बने।

(xiv) न्यायसगत आधार पर जितना जल्द मुमकिन हो चीन भारत सीमा विवाद का शातिपूर्ण तरीके से समाधान हो।

(xv) कश्मीर समेत सभी भारत पाक विवाद शातिपूर्ण तरीके से हल हो तथा सयुक्त रक्षा और समान दर्जे के आधार पर दोनो देशो का एक महासघ बने, सीमा पर जम्मू कश्मीर पजाब राजस्थान और गुजरात मे सभी रास्ते खोले जाए, इसके बाद पारस्परिक सहमति के दूसरे मुद्दे निवटाए जा सकते हैं। अगर फिलहाल पाकिस्तान को महासघ का सुझाव मजूर न हो तो तुरत अनाक्रमण सधि और एटमी हथियारो का भडार न करने की सधि की जाए।

3 भारतीय राज्यतत्र के क्षेत्र मे

निदेशक सिद्धात के अनुरूप इस योजना के तहत राजनतिक प्रक्रिया मे समूची भारतीय जनता को शामिल करने के लिए जहा कही और जब कभी सभव हो समान विचारो वाली दूसरी ताकतो के साथ मिलकर नीचे बताए सवैधानिक, कानूनी और राजनतिक पग उठाना वाछित है।

(क) मूल लक्ष्य निदशक सिद्धात, कायशैली और अतरराष्ट्रीय राज्य की स्थापना (जसा कि ऊपर दिए पैरो मे बताया गया है) के मुद्दे भारतीय सविधान मे दज हो ताकि उसका उद्देश्य और दिशा निर्धारित हो सके।

(ख) सविधान म दज सभी मूल अभिधारणाओ की परिभाषा की जाए।

(ग) सरकार की ऐसी व्यवस्था कायम हो जिसम केंद्रीय और राज्य विधायिकाओ के जरिए केंद्र और राज्य की कायपालिकाओ पर जनता का नियत्रण

के ससद और केंद्र सरकार से है।

(घ) केंद्र राज्य और स्थानीय सरकारो के बीच आर्थिक एव विकास सबधी कार्यों को छोडकर सभी प्रमुख समस्याओ के निवटारे के लिए अनुच्छेद 263 के तहत एक अतरसरकारी परिषद स्थापित हो जिसम प्रधानमत्री, सभी मुख्यमत्री और केंद्रीय मत्री शामिल हा, परिषद की सहायता के लिए मत्रियो की एक छोटी स्थायी समिति और विशेषज्ञो की एक सलाहकार समिति हो, अतरराज्यीय समस्याए अतरसरकारी परिषद म उठाए जाने स पहले उन पर क्षेत्रीय परिषदो मे विचार विमश हो।

(ङ) अनुच्छेद 263 के तहत बनी मौजूदा राष्ट्रीय विकास परिषद का आर्थिक एव विकास परिषद के रूप मे पुनगठन हो, सभी आर्थिक और विकास समस्याओ के निपटार के लिए उसकी एक छोटी स्थायी समिति हो तथा जिला स्तर के नियोजन को उच्च प्राथमिकता दी जाए।

(च) राज्यो को अधिक वित्तीय और औद्योगिक अधिकार दिए जाए।

(छ) व्यापार, वाणिज्य और आपसी लेन देन क काम से जुडे मामलो को निपटाने के लिए अनुच्छेद 307 के तहत एक विशेषज्ञ प्राधिकरण गठित हो।

(ज) अनुच्छेद 352, 356 और 357 के अलावा अनुच्छेद 359 और 360 के उपबधा के तहत केंद्र को मिले आपातकालीन अधिकारो को खत्म किया जाए। पजाब और अय ऐसे राज्यो को, जहा अल्पसख्यक और जनजातीय समुदायो का प्रबल बहुमत है, विशेष अधिकार मिलें (जैसे जम्मू कश्मीर को अनुच्छेद 370 के तहत हासिल हैं)।

(झ) भाषा, तारतम्यता और गाव एक इकाई के तितरफा असूलो के आधार पर विभिन्न राज्यो के बीच क्षेत्रीय और सीमा विवाद हल किए जाए।

(ञ) जिला परिषदो, निगमो, नगर पालिकाओ, पचायता आदि स्थानीय निकाया को अपने अपने क्षेत्र का कामकाज चलान के लिए पूर अधिकार सौंपकर, इन क्षत्रो म प्रशासकीय सेवाओ को उक्त सावजनिक सस्थाओ क प्रति जवाबदेह बनाकर तथा इन सस्थाओ के चुनाव और कामकाज को एक अखिल भारतीय कानून की तज पर सुनिश्चित बनाकर प्रशासन पर लोगो का नियत्रण स्थापित किया जाए।

(ट) केंद्र या राज्य विधायिका के दोना सदनो के समान अधिकार हो तथा अध्यक्ष अथवा सभापति के निणया को वाद योग्य बनाया जाए।

(ठ) सरकार के अध्यादेश जारी करने के अधिकार सबधी सवधानिक प्राव धान को खत्म किया जाए।

(ड) राजकीय समारोहा को धार्मिक आयोजनो स अलग करके, धार्मिक सस्थाना को राज्य से मिलन वाली सारी सहायता बद करके और राज्य के मामलो म धार्मिक सस्थानो के हस्तक्षेप पर रोक लगाकर राजनीति को धम से अलग किया जाए तथा राज्य के धमनिरपेक्ष आधार को मजबूत बनाया जाए।

(ढ) रडियो और दूरदशन का काम एक स्वायत्त सस्था को सौंपा जाए जो

सरकारी नियंत्रण से मुक्त हो।

(ण) केंद्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों के बीच पत्र व्यवहार के लिए अंग्रेजी और हिंदी को जुड़वा सरकारी भाषाओं के रूप में मान्यता देकर सरकारी भाषा की समस्या हल की जाए तथा राज्यों में उनकी अपनी अपनी भाषा को शिक्षा और प्रशासन का माध्यम बनाया जाए।

(त) जनता द्वारा 10 साल के लिए जज चुनने की प्रणाली लागू करके तथा सीधा सस्ता और तुरन्त न्याय प्रदान करके न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित कर, न्यायिक व्यवस्था को अधिक लोकतांत्रिक बनाने के लिए उच्चस्तरीय विधि आयोग द्वारा उसके समूचे कामकाज की समीक्षा करवाई जाए।

(थ) रहने की आजादी, मत करण की आजादी धार्मिक आस्था और उपासना, बोलने लिखने सभा करने संगठन बनाने हड़ताल करने चलने फिरने और व्यवसाय करने की आजादी सुनिश्चित हो नस्ल धर्म राष्ट्रीयता लिंग, जाति आदि का भेदभाव किए बिना सभी नागरिकों को समान अधिकार की गारंटी हो, प्रत्येक नागरिक को किसी भी अधिकारी या निर्वाचित प्रतिनिधि (राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री सहित) के खिलाफ अदालत में मुकदमा दायर करने का अधिकार हो।

(द) मृत्युदंड खत्म किया जाए सभी प्रकार के नजरबंदी कानूनों (मीसा, एस्मा आतंकवाद विरोधी कानून आदि) को मसूख किया जाए अशान्त क्षेत्र कानून वापस लिया जाए भारतीय दंड संहिता के तहत लोगों की स्वतंत्रताओं पर रोक लगाने वाली सभी धाराओं (जैसे धारा 144 107 151 आदि) को हटाया जाए गुप्तचर एजेंसियों द्वारा डाक रोकने और टेलीफोन की बातचीत सुनने का काम बंद हो, सभी प्रकार के राजनैतिक नजरबंदों को रिहा किया जाए तथा राजनैतिक व ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं के खिलाफ चल रहे मुकदमे और वारंट गिरफ्तारी वापस लिए जाए।

(ध) कैदियों को बेहतर नागरिक बनाने के उद्देश्य से जेल व्यवस्था में सुधार किए जाए।

(न) चुनाव की एक निष्पक्ष प्रणाली सुनिश्चित बने जिसके तहत हर प्रकार के चुनाव में (पंचायत से लेकर संसद तक) खड़े सभी उम्मीदवारों का खर्च चुनाव आयोग उठाए, केंद्रीय और राज्य विधायिकाओं के चुनाव दलीय सूचियों के अनुसार सानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर तथा बाकी सभी चुनाव क्षेत्रवार आयोजित हों, क्षेत्रवार चुनावों की स्थिति में हर चुनावक्षेत्र के मतदाताओं की बहुसंख्या को किसी भी समय अपना निर्वाचित प्रतिनिधि वापस बुलाने का अधिकार हो उन्हीं निर्दलीय उम्मीदवारों को विधायिकाओं के चुनाव लड़ने की अनुमति हो जो अपनी-अपनी जिला परिषदों से धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और
होने का प्रमाणपत्र पेश करें 18 साल या उससे अधिक उम्र वाले हर
पहचान पत्र मिले चुनाव लड़ने वाले सभी दलों को टीवी और

पहुच हो, केंद्र या राज्य सरकारें चुनाव से एक महीना पहले इस्तीफा दे दें और इस अवधि मे ससदीय चुनावो की सूरत मे राष्ट्रपति शासन और विधानसभा चुनावो की सूरत मे राज्यपाल शासन लागू हो, चुनाव आयोग एक बहुसदस्यीय सस्था हो जिसके सदस्य प्रधानमत्री, ससद मे विपक्षी पार्टियों के नेताओ और सुप्रीम कोट के मुख्य न्याया धीश के सलाह मशविरे से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त हो, राज्यो के चुनाव आयुक्त पूणकालिक हो और उनका दर्जा हाईकोट जज के बराबर हो, वे चुनाव को पूरक काय के तौर पर निभाने वाले कायकारी अफ्सर न हो, छात्रो की सालाना परीक्षाओ, कटाई के मौसम, जलवायु सबधी परिस्थितियो आदि के मद्देनजर चुनाव की एक स्थायी तिथि मुकरर की जाए जबकि उपचुनाव हर साल आयोजित किए जाए तथा यथासमय लोकसभा और विधानसभाओ के लिए एक साथ नियमित चुनाव कराए जाए।

(प) नीचे दी शर्तें पूरी करने के आधार पर चुनाव लडने वाली सभी पार्टियो का चुनाव आयोग मे पजीकरण हो

(i) ये पार्टिया धम को राजनीति से अलग करने का सिद्धात मानें।

(ii) अपने मच से किसी भी धम, जाति नस्ल, भाषा आदि के खिलाफ प्रचार करने या कोई भी धार्मिक अनुष्ठान करने की मनाही करें।

(iii) चुनाव आयोग की देखरेख मे कम से-कम दो साल मे एक बार हर स्तर पर पदाधिकारियो का चुनाव करवाए।

(iv) चुनाव आयाग द्वारा सुझाई गई लेखाकारो की सूची म से किसी लेखा कार से अपने हिसाब किताब की जाच करवाए।

(v) भारत की विविधता मे एकता को मानें।

(फ) प्रशासकीय सेवाओ का वैज्ञानिक पुनगठन हो और फालतू नौकरियो का खत्म किया जाए (जा प्रशासकीय काम म लोगा को पूरी तरह जोडने से जरूरी बन जाता है), इस तरह करोडो रुपए की बचत करके इस रकम को पूजी के अभाव वाली भारतीय अथव्यवस्था मे लगाया जाए।

(ब) जानकारी पाने की आजादी का कानून बने जिसके तहत कोई व्यक्ति किसी भी सरकारी एजेंसी से वाछित दस्तावेजो का उचित हवाला दकर उनके बारे म जानकारी पाने का अनुरोध कर सकता हो जिस पर उस सरकारी एजेंसी को 10 दिन के अदर जवाब देना हागा। अखबारो पर उद्योग समूहो के नियत्रण के बजाय ट्रस्टो की मिलकियत अथवा प्रबधन को बढावा दिया जाए तथा प्रेस कौंसिल की ओर से प्रेस के लिए आचार सहिता तैयार की जाए।

(भ) सरकारी गोपनीयता कानून की धारा 5 को हटाया जाए जैसा कि भार तीय प्रेस कौंसिल और भारतीय विधि सस्थान ने सिफारिश की है तथा उसके दूसरे दमनकारी प्रावधानो को खत्म किया जाए, अदालत की अवमानना वाले कानून को रद्द किया जाए तथा विधायिका के सदस्यो को मिले विशषाधिकार खत्म हा।

(म) विभिन्न राष्ट्रीयताओ के स्वैच्छिक सघ क तौर पर भारत की एकता

का पक्षपोषण किया जाए।

4 भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे

निदेशक सिद्धात के अनुरूप इस योजना के तहत आर्थिक प्रक्रिया (यानी उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग) मे समूची भारतीय जनता को शामिल करने के लिए जहा कही और जब कभी सभव हो समान विचारो वाली दूसरी ताकता के साथ मिलकर नीचे दिए आर्थिक पग उठाना वाछित है।

(क) ऐसा लोकतात्रिक आर्थिक मॉडल बनाया जाए जिसका लक्ष्य सतुलित आर्थिक विकास के साथ साथ सामाजिक न्याय और मानवीय एव भौतिक ससाधनो का पूर्ण उपयोग करना हो, जिसका प्रबध भारतीय जनता के हाथ मे हो, जिसमे परपरागत मालिक नौकर सबध खत्म कर दिए जाए तथा जिसके तहत प्रतियोगी बाजार व्यवस्था और सगठित राज्य नियोजन दोनो का उपयोग हो। इस तरह यह मॉडल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वाले मौजूदा सभी मॉडलो (यानी राज्य नियत्रित मार्क्सवादी मॉडल, बाजार पर आधारित पश्चिमी उदारवादी मॉडल, मिश्रित पश्चिमी केन्सवादी माडल और मिश्रित पिछडे देशो के मॉडल) से भिन्न होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था का यह लोकतात्रिक मॉडल सगठित और असगठित दो क्षेत्रो से गठित होगा।

(1) सगठित लोकतात्रिक क्षेत्र (भारतीय अर्थव्यवस्था का करीब 15 फीसदी हिस्सा) सगठित सरकारी क्षेत्र और सगठित निजी क्षेत्र के विलय से बनेगा। इस क्षेत्र मे बडे पूजीपति घरानो की मिलकियत वाले ब्लाक शेयरो (जो विभिन्न उद्योगो मे एक से 10 फीसदी तक हैं) को कानूनन खत्म कर दिया जाएगा पर उन्हे नए कानून के तहत अनुज्ञेय शेयर रखने की अनुमति होगी। 50 फीसदी शेयर भारतीय राज्य के पास रहेगे जबकि बाकी 50 फीसदी भारतीय लोगो मे बाटे जाएगे जिनमे एक-तिहाई तकनीशियनो व कर्मचारियो समेत मजदूरो मे, एक तिहाई ग्रामीण लोगो और एक-तिहाई शहरी लोगो मे वितरित होगे। इस समूचे क्षेत्र और इसके हरेक उद्यम का नियत्रण ऐसे प्रबधक बोर्डों के पास रहेगा जिनमे 30 फीसदी राज्य के प्रतिनिधि (अफसर-कर्मचारी, सासद अथवा विधायक आदि समेत), 30 फीसदी मजदूरो के चुने गए प्रतिनिधि, 20 फीसदी तकनीशियनो और कर्मचारियो के चुने गए प्रतिनिधि, 10 फीसदी ग्रामीण शेयरधारको के चुने हुए प्रतिनिधि और 10 फीसदी शहरी शेयरधारको के चुने हुए प्रतिनिधि रहेंगे। इस क्षेत्र की सभी समस्याए (जैसे पूंजी, टेक्नोलॉजी, बाजार, आयात निर्यात, बीमार उद्योग पिछडे क्षेत्रो का औद्योगीकरण आदि) राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय प्रबधक बोर्ड, राज्य स्तर पर राज्य प्रबधक बोर्ड और उद्यम स्तर पर फैक्ट्री प्रबध बोर्ड द्वारा निवटाई जाएगी।

(11) असगठित लोकतात्रिक क्षेत्र (भारतीय अर्थव्यवस्था का लगभग 85 फीसदी हिस्सा) खुद मालिकाना और खुद रोजगार वाला क्षेत्र है जिसमे ज्यादातर कृषि क्षेत्र आता है। इस क्षेत्र मे लगे लोग मुख्यतया दो श्रेणियो से गठित हैं। एक

वे जो शारीरिक श्रम बेचते हैं अथवा ग्रामीण खेतिहर मजदूर और गैर औद्यागिक शहरी मजदूर। इनमे निर्माण मजदूर, बोझा उठाने वाले मजूर, घरेलू नौकर, सफाई मजदूर, ढाबा मजदूर, ठेला खीचने वाले, रिक्शाचालक, लकडी चीरने वाले, इट भट्टा मजदूर आदि आते हैं। दूसरे वे जो अपनी खेती व्यापार छोटे उद्यमो आदि म काम करते हैं अथवा प्रशासन, सचार तत्र आदि मे नौकरी करते हैं दोनो श्रेणियो की समस्याएँ एक दम अलग है। यहाँ तक कि एक ही श्रेणी की समस्याओ म भी अतर है। पहली श्रेणी को अमूमन गरीबी या कम त्रय शक्ति और बेरोजगारी या अद्ध बेरोजगारी की समस्याओ का सामना है। दूसरी श्रेणी की जरूरतें मुख्यतया सस्ते ऋण और बाजार की सुविधाए हासिल करने और कभी कभी अनुकूल तकनीक और कच्चा माल पाने की हैं। अपनी समस्याओ के समाधान के लिए दोनो श्रेणिया के विभिन्न आर्थिक समूहो को राष्ट्रीय सगठनो मे पिरोया जाएगा। मसलन देहाती खेतिहर मजदूरो, शहरी गर औद्यागिक मजदूरा, मध्यम और धनी जमीदारा, छोटे व्यापारियो, बडे व्यापारियो, छोटे उद्योग पतियो सरकारी कमचारियो आदि के अलग सगठन बनाए जाएग। हर राष्ट्रीय सगठन मे उसके पूरे समूह को सदस्यता दी जाएगी और वह राज्य, जिला, शहर, नगर, गाँव आदि सभी स्तरो पर निर्वाचित ऐसी समितियो क जरिए काम करेगा जिनम एक तिहाई सरकारी प्रतिनिधि हाग।

(iii) असगठित लोकतान्त्रिक क्षेत्र को समृद्ध बनाने के लिए कृषि का उद्योग के समान विकास किया जाएगा। दोनो म एक जसे कानून लागू किए जाएगे। कृषि का कृषि उद्योग मे विकास करने के लिए एक अखिल भारतीय कृषि उद्योग परिषद बनाई जाएगी। इसमे सरकार, कृषि औद्योगिक विशेषज्ञ, सगठित लोकतान्त्रिक क्षेत्र, मध्यम और बडे जमीदारो के राष्ट्रीय सगठन तथा खेतिहर मजदूरा के राष्ट्रीय सगठन के प्रतिनिधियो को शामिल किया जाएगा। यह परिषद कृषि की दूसरी समस्याओ को भी निबटाएगी जैसे कि आवश्यकता पर आधारित कृषि जीविका उजरत, वतमान हदबदी कानूनो पर कारगर ढग से अमल, फालतू और खाली पडी जमीन को भूमि हीनो मे बाटने और उन्हें खेती के लिए लबी अवधि के कज मुहैया कराने, किसाना पर पुराने कज खतम करन उन्ह आसान कज, बीज, खाद, कीटनाशक दवाइया मुहैया कराने, कृषि उपज के लाभकारी मूल्य, भूमि जोतो को इकटठा करने, भूमि कटाव, बाढ नियत्रण, भूमि सरक्षण, पशु चिकित्सा सेवाओ का विस्तार मौजूदा सडको स्कूलो और चिकित्सालयो की मरम्मत परपरागत और आधुनिक सिचाई कार्यों के जरिए सभी उपलब्ध जल ससाधनो का पूण उपयोग, दोहरी फसल, सूखी खेती, डेयरी फार्मिंग, मछली पालने, मुर्गी पालने, कोल्ड स्टोर, बागबानी, पारिवारिक इकाई के आधार पर फसल बीमा आदि आदि।

(घ) (i) याजना आयोग को सवधानिक दर्जा दिया जाएगा। उसे सभी राष्ट्रीय आर्थिक सगठना की शिखर सस्था माना जाएगा। वह सामाजिक न्याय सहित सतुलित आर्थिक विकास के लिए समस्त मानवीय, तकनीकी और कच्चे माल क साधना

के उपयोग की योजना बनाएगा तथा राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों की विभिन्न आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करेगा।

(ii) योजना आयोग में 20 फीसदी सरकारी प्रतिनिधि, 20 फीसदी अगुआ अर्थशास्त्री, 20 फीसदी संसदीय प्रतिनिधि, 20 फीसदी संगठित लोकतांत्रिक क्षेत्र, 10 फीसदी कृषि उद्योग परिषद और 10 फीसदी असंगठित लोकतांत्रिक क्षेत्र के लोग होंगे।

(ग) विदेशी पूंजी को सुविधाएं दी जाएंगी बशर्ते कि वह अपनी निर्यात कमाई का महज 50 फीसदी और भारत में पैदा किए गए अतिरिक्त धन को बाहर न ले जाना स्वीकार कर ले।

(घ) विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में मूल और प्रायोगिक दोनों किस्म के शोध पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद का कम से कम दो फीसदी निवेश किया जाए। टेक्नोलॉजी को आधुनिक बनाया जाए और ठोस हालात के मुताबिक उसका प्रयोग हो।

(ङ) बिजली उत्पादन पर अधिक जोर दिया जाए।

(च) मानव वस्तुओं, खासकर असंगठित लोकतांत्रिक क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं के उत्पादन और विपणन में पूर्ण गुणवत्ता नियंत्रण सुनिश्चित हो।

(छ) काम, आवश्यकता पर आधारित निर्वाह वेतन, आवास, बुढ़ापे और बीमारी अथवा पूर्ण या आंशिक विकलांगता की स्थिति में जीविका, माध्यमिक स्तर तक मुफ्त शिक्षा, मुफ्त चिकित्सा परामर्श, 35 घंटे के काम सप्ताह आदि को संवैधानिक अधिकार बनाया जाए।

(ज) मौजूदा कर प्रणाली का पुनर्गठन हो और उसमें करों का बोझ उठा सकने की क्षमता का असूल लागू किया जाए।

(झ) आम लोगों के हितों में एक कारगर दाम नीति लागू हो और गरीबी रेखा से नीचे जिंदगी बसर करने वालों को सस्ते दाम पर जरूरी वस्तुएं मुहैया हों।

(ञ) रक्षा खर्च पर तत्काल 50 फीसदी कटौती हो और फिर धीरे धीरे इसका पूरी तरह उन्मूलन कर दिया जाए।

भारतीय संस्कृति के क्षेत्र में

निदेशक सिद्धांत के अनुरूप इस योजना के तहत सांस्कृतिक प्रक्रिया में समूची भारतीय जनता को शामिल करने के लिए जहां कहीं और जब कभी संभव हो समान विचारों वाली दूसरी ताकतों के साथ मिलकर नीचे बताए सांस्कृतिक पग उठाना वांछित है।

शिक्षा

(1) शिक्षा को अंतरराष्ट्रवादी, मानवतावादी, लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक, व्यावसायिक आदि बनाकर उसमें मूल परिवर्तन लाए जाएं और इस प्रकार

उसे भारत और दुनिया के तेजरफ्तार औद्योगीकरण के अनुरूप बनाना जाए।

(ii) विश्वविद्यालय स्तर तक योग्य छात्रो को और माध्यमिक स्तर तक सभी को मुफ्त शिक्षा दी जाए और उसे मौजूदा व्यवसायो से जोडा जाए।

(iii) प्रौढ शिक्षा का कारगर बदोबस्त करके निरक्षरता का खात्मा हो।

(iv) उच्च वैज्ञानिक व तक्नीकी शिक्षा के लिए सुविधाएँ बढाई जाएँ।

(v) विभिन्न उद्योग धधो मे मजदूरो के लिए ट्रेनिंग कोर्सों का बदोबस्त हो।

(vi) वैज्ञानिक टेक्नीकल सस्थानो मे हुई खोजो और लोकतांत्रिक क्षेत्र की जरूरतो के बीच नियोजित सतुलन कायम हो।

(vii) विश्वविद्यालयो और उच्च शिक्षा सस्थानो को स्वायत्तता और अकादमिक स्वतत्रता मिले।

(viii) शिक्षको को उचित वेतन मिले।

भाषा

(i) भारत की सभी भाषाओ खासकर सविधान द्वारा मान्य भाषाओ को बराबर दर्जा मिले तथा लोगो को किसी भी श्रेणी पर उनकी मर्जी के खिलाफ कोई भाषा न थोपी जाए।

(ii) किसी भी निर्वाचित सस्थान (ससद हो या पचायत) मे हर सदस्य को अपनी मातभाषा मे बोलने का अधिकार हो तथा केंद्र सरकार के प्रकाशनो को सविधान द्वारा मान्य सभी भाषाओ मे छापा जाए।

(iii) अखिल भारतीय सेवाओ की सभी प्रतियोगी परीक्षाएँ सविधान द्वारा मान्य सारी भाषाओ म आयोजित की जाएँ।

(iv) एक ही क्षेत्र म रहने वाले एक लाख लोगो द्वारा बोली जा रही हरेक भाषा को सवैधानिक दर्जा दिया जाए।

(v) लोगो द्वारा अपनी मातृभाषा मे शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को स्वीकार किया जाए।

(vi) उन राज्यो और क्षेत्रो मे उर्दू और उसकी लिपि की रक्षा की जाए जहाँ वह परपरागत रूप स इस्तेमाल होती आ रही है।

साहित्य और कला

(i) भारत म जनजातीय समूहो समेत हरेक राष्ट्रीयता के साहित्य, कला और सस्कृति (जिसम लोक सस्कृति भी शामिल है) के विकास मे सहायता दी जाए, उनके मानवीय और लोकतांत्रिक पक्षो को उजागर किया जाए और उन्हें अतरराष्ट्रीय भाईचारे की दिशा दी जाए, जातिवादी व साप्रदायिक पूर्वाग्रहो के अलावा चापलूसी,

अधविश्वास, नस्ली व राष्ट्रीय घृणा और युद्ध प्रचार के विचारो को जड से उखाड दिया जाए।

(ii) साहित्य, कला और सस्कृति के प्रोत्साहन के लिए और इस क्षेत्र के कर्मियो की बेहतरी के लिए सबद्ध व्यक्तियो द्वारा निर्वाचित केंद्रीय, राज्य और जिला कमेटियाँ कायम की जाएँ।

(iii) अश्लील सस्कृति को छोड सास्कृतिक गतिविधियो पर लगी सभी पाबदियो को हटाया जाए।

स्वास्थ्य

(i) लोगो के स्वास्थ्य के लिए बेहतर बदोबस्त हो और चिकित्सा व प्रसूति सेवाओ का जाल बिछाकर चिकित्सा सुविधाओ को आम आदमी की पहुँच तक लाया जाए, हैजा, मलेरिया आदि महामारियो के उन्मूलन की ओर विशेष ध्यान दिया जाए तथा पीने का साफ पानी मुहैया करके देहाती इलाको मे सफाई और सक्रमण निरोधी टीके लगाकर और सस्ती दवाइयो का उत्पादन करके स्वास्थ्य पर पर्याप्त बल दिया जाए।

(ii) खेलो और शारीरिक व्यायाम के दूसरे रूपो के लिए सहूलियतें मुहैया कराई जाएँ ताकि आम लोग उनमे भाग ले सकें।

स्वच्छ जीवन के लिए

(i) धम को राजनीति से अलग किया जाए।

(ii) भ्रष्टाचार की रोकथाम के लिए कारगर कदम उठाए जाएँ, इनमे भ्रष्टाचार के मामलो की जाच के लिए केन्द्र, राज्य और जिला स्तर पर भ्रष्टाचार विरोधी बोड कायम करना भी शामिल है जिन्हे ससदीय और विधानसभा चुनावो के साथ ही 10 वष की अवधि के लिए लोगो द्वारा चुना जाए।

धार्मिक और सास्कृतिक अल्पसख्यक

सभी अल्पसख्यको के धार्मिक व सास्कृतिक अधिकारो की रक्षा के लिए तथा राजनैतिक, आर्थिक व सास्कृतिक क्षेत्रो मे उनके खिलाफ सभी भेदभावपूण कारवाइयो के खात्मे के लिए जरूरी पग उठाए जाएँ।

अनुसूचित जातियाँ

(i) उन सभी सामाजिक असमथताओ को हटाया जाए जिनका शिकार अनुसूचित जातियाँ हैं।

(ii) जातीय उत्पीडन को कानून के क्षेत्र मे लाकर दडनीय करार दि जाए,।

(iii) अनुसूचित जातियो के राजनैतिक, आर्थिक और सास्कृतिक उत्थान के लिए जरूरी पग उठाए जाए।

(iv) दलितो पर जुल्म ढाए जाने के मामले निपटान के लिए विशेष अदालतें स्थापित हो।

अनुसूचित जनजातियां

(i) जनजातीय इलाको मे सामाजिक विकास के स्तर के मद्देनजर उनकी अलग अलग प्रशासनिक इकाइया बनाई जाए अथवा ऐसे किसी भी क्षेत्र को भारत सघ के राज्य (नगालैंड, मिजोरम की तरह) का दर्जा प्रदान किया जाए।

(ii) जनजातीय इलाको मे उद्योगो और सचार व्यवस्था का विकास हो।

(iii) बदली खेती के स्थान पर टिकाऊ खेती शुरू करने के लिए जनजातियो को आर्थिक और तकनीकी सहायता मिले।

(iv) निहित स्वार्थों की ओर से जनजातिया की भूमि पर कब्जे और जगल के ठेकेदारो की ओर से उनके शोषण पर पाबदी लगे।

(v) जनजातियो को स्थानीय वन उपज का इस्तेमाल करने के अधिकार हो।

(vi) सस्ती दरो पर जरूरी चीजे (जसे कपडा, चीनी, नमक, मिट्टी का तेल आदि) मुहैया कराने और उनकी चीजो की उचित कीमत दिलाने के लिए जनजातियो की सहकारी समितिया कायम हो।

(vii) भाषा कला और सस्कृति के विकास मे उनकी मदद की जाए।

(viii) उन्हें शिक्षा और स्वास्थ्य की मुफ्त सेवाए प्रदान की जाए।

अनुसूचित जातिया और जनजातियो को मिले मौजूदा विशेष अधिकार

इन समुदायो के उन सदस्यो को मौजूदा विशेष अधिकार जारी रखे जाए जिनकी आमदनी औसत प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय से कम है तथा अनुसूचित जाति एव जनजाति आयोग को कानूनी मजूरी प्रदान की जाए।

महिलाए

(i) एसी सामाजिक असमयताए हटाई जाए जिनका शिकार महिलाए हैं।

(ii) उजरतो सपत्ति के उत्तराधिकार विवाह, तलाक, शिक्षा सस्थानो मे प्रवेश व्यवसायो और नौकरियो मे महिलाओ को पुरुषो के बराबर अधिकार हो।

(iii) बलात्कार दहज उत्पीडन, पत्नी की मारपीट तथा महिलाओ के खिलाफ सभी प्रकार की यौन हिंसा के मामलो के लिए हर ब्लाक मे महिलाओ की निर्वाचित सतर्कता समितिया कायम हो।

(iv) वेश्यावृति और देवदासी प्रथा का उन्मूलन हो तथा इससे निजात पाई महिलाओ को रोजगार मिल ।

(v) सभी प्रकार की दहेज प्रथा पर रोक लगे ।

(vi) सेवाओ की कुछ श्रेणियो जैसे एअर होस्टेस आदि के काम म महिलाओ के प्रवेश पर लगी पाबदिया हटें ।

(vii) शिशु गह और बाल सदन जैसी विशेष सेवाए प्रदान करके देहाती और शहरी दोनो इलाका मे मा और बच्चे की ओर विशेष ध्यान दिया जाए ।

(viii) ऐसी महिलाओ का आवश्यकता पर आधारित भत्ता प्रदान किया जाए जिनकी आय का कोई स्रोत न हो ।

(ix) सती और शिशु हत्या के कानून कारगर ढग से लागू हो ।

6 विभिन्न वर्गो की जीवन स्थितियो के क्षेत्र मे

निदेशक सिद्धात के अनुरूप इस योजना के तहत लोगो की जीवन स्थितियो की प्रक्रिया मे समूची भारतीय जनता को शामिल करने के लिए जहा कही और जब कभी सभव हो समान विचारो वाली दूसरी ताकतो क साथ मिलकर नीचे बताए पग उठाना वाछित है ।

औद्योगिक मजदूर

(i) त्रिपक्षीय सम्मेलना द्वारा निर्धारित आवश्यकता पर आधारित निर्वाह वेतन और महगाई भत्ते की परिवतनशील स्केल, बोनस ओर ग्रेच्यूटी, सवेतन छुट्टिया तथा वेतन का हफ्तावार भुगतान हो ।

(ii) किसी नस्ल धम जाति या लिंग के भेदभाव के बिना समान काम के लिए समान वेतन हो ।

(iii) पूण वतन सहित एक महीने की छुट्टी या अगर छुट्टी मजूर नही की जाती तो उसके बराबर रकम पाने का अधिकार हो ।

(iv) 35 घटे का काय सप्ताह मुकर्रर हो ।

(v) सामाजिक सुरक्षा का दायरा बढ़े जैस कि बेरोजगारी, खराब सेहत, बुढापे की सूरत म सहायता मिले और सस्ती दर पर आवास सुविधाए मुहैया हो ।

(vi) मजदूरो के गुप्त मतदान के आधार पर ट्रेड यूनियना को अनिवाय मान्यता मिले, सामूहिक सौदेबाजी और हडताल व हमदर्दी मे होने वाली हडताल का अधिकार हो, मजदूरो को ट्रेड यूनियनो के जरिए भर्ती किया जाए तथा निर्वाचित प्रति निधियो के माध्यम से उनकी प्रबध मे भागीदारी हो ।

(vii) कानून म मजदूर विरोधी सभी प्रावधान खत्म हो तथा वेतनजाम, अनिवाय जमा योजना, वेतन कटौती, छटनी और कारखाना बदी, यूनियन के सदस्या

की भेदभावपूर्ण वर्खास्तगी, तालाबदी, मजदूरो द्वारा यूनियन से लुक छिपकर समझौता करने की प्रवति पर रोक हो।

(viii) ओवर टाइम और रात के काम पर पाबदी हो, सिवा उन हालात के जहा तकनीकी कारणो से ऐसा करना वेहद जरूरी है।

(ix) सभी अनियमित, अस्थायी और बदली मजदूर स्थायी हो।

(x) सोलह वष से कम आयु के बच्चो को काम पर लगाना वर्जित हो और किशोरो (16 से 20 वष की आयु) के लिए काम का दिन चार घटे तक सीमित हो।

(xi) महिलाओ के स्वास्थ्य के लिए हानिकर उद्योगा मे महिला मजदूरा की नियुक्ति वर्जित हो, महिलाओ को रात की पाली से मुक्त रखा जाए, तथा उन्ह वेतन क नुकसान के बिना प्रसव के आठ हफ्ते पहले और आठ हफ्ते बाद काम से छुट्टी हा।

(xii) ठेका मजदूरी पर पाबदी लगाई जाए।

(xiii) ऐसी सभी फक्ट्रियो म जहा महिला मजदूर हैं शिशुओ के लिए नसरिया और स्तनपान कराने वाली माताओ के लिए कमरे उपलब्ध हो, ऐसी माताआ को हर तीन घटे के अतराल मे कम से कम आध घटे का अल्पअवकाश मिले तथा उनके काम के छह घट मुकरर हा।

(xiv) सभी श्रेणियो और सभी जगहा के मजदूरा को हर पकार की असमथता (खराब सेहत, वद्धावस्था, दुघटना आदि) और बेरोजगारी क विरुद्ध पूण सामाजिक बीमे की गारटी हो।

(xv) भविष्यनिधि, इएसआई के अशदानो म जमा, सुरक्षा नियमो और दूसरे श्रम कानूना का उल्लघन करने वाले मालिका को सजा का प्रावधान हो।

(xvi) मान्यता रहित मजदूर वस्तिया म बिजली, पानी और दूसरी शहरी सुविधाए देकर गदी बस्तियो का तत्काल सुधार हो और यथोचित समय के भीतर हर मजदूर परिवार को ठीकठाक मकान उपलब्ध हा।

(xvii) राज्य और जिला स्तरा पर श्रम निरीक्षणालय कायम हो और उन्हे अपनी सीमाआ म सभी श्रम कानून लागू करने का अधिकार हो।

(xviii) सभी प्रकार के औद्योगिक विवादो का एक निश्चित अवधि मे निपटान के लिए उद्योग की सभी शाखाओ म औद्योगिक न्यायालय स्थापित हो जिनमे मजदूरो और मालिको क निर्वाचित प्रतिनिधियो की सख्या बराबर हो।

(xix) श्रम उत्पादकता बढाने के लिए मजदूरो की पहल और खोजी प्रवत्ति प्रयोग मे लाई जाए जबकि वकलोड की स्थिति मे उनके हिता की रक्षा हो।

गर-औद्योगिक शहरी मजदूर

(i) इन मजदूरो को कोई परिभाषा देना जिनम निर्माण मजदूर, लकडी चीरने वाल, इट भट्टा मजदूर, बाक्षा उठाने वाले, ठेला खीचने वाल, रिक्शाचालक,

ढाबा मजदूर, घरलू नौकर, सफाई मजदूर और दूसरे कई प्रकार के मजदूर हो सकते हैं।

(ii) इन मजदूरो को ट्रेड यूनियन अधिकार, आवश्यकता पर आधारित निर्वाह वेतन, छुट्टिया और दूसरी सुविधाए सुनिश्चित हो।

(iii) सफाई मजदूरो के काम की अमानवीय स्थितियो (मसलन सिर पर मैला ढोने, मैनहोलो और नालियो की सफाई) पर रोक लगे और उन्हे स्वास्थ्य रक्षा के आधुनिक यन्त्र मुहैया कराए जाए।

कृषि मजदूर

(i) कृषि मजदूरो को ट्रेड यूनियन अधिकार, आवश्यकता पर आधारित निर्वाह वेतन बोनस, मुआवजा, पेंशन और दूसरी सुविधाए सुनिश्चित हो।

(ii) सभी सूदखोरी कर्ज मसूख हो।

(iii) उन्हे कुटीर उद्योगो, डेयरी फाम आदि के लिए ब्याज मुक्त कर्ज मिलें।

(iv) सामुदायिक कार्यों के लिए जरूरी जमीन को छोडकर सारी कृषि योग्य भूमि मजदूरो मे उनकी अपनी निर्वाचित कमेटियो की देखरेख मे बटे तथा उन्हे कृषि काय के लिए नकद सहायता भी मिले।

(v) काश्तकारी समेत सभी प्रकार के बधुआ श्रम का उन्मूलन हो।

(vi) कृषि मजदूरो को मकान के लिए मुफ्त जगह और उसे बनाने के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध हो।

(vii) कृषि मजदूरो को सर्वेच्छिक कोआपरेटिव फार्मिग सोसाइटिया बनाने मे सरकारी सहायता मिले।

(viii) देहाती उद्योग शुरू करके और खाली दिनो मे वैकल्पिक रोजगार देकर कृषि मजदूरो के अल्प रोजगार की समस्या हल की जाए।

मध्यम किसान

उन्हे सस्ता कर्ज तथा बीज, खाद, कीटनाशक दवाइया, मशीनरी आदि जैसे दूसरे कृषि उपकरण मुहैया कराए जाए।

छात्र एव युवा

(i) माध्यमिक स्तर तक उन्हे मुफ्त शिक्षा खासकर रोजगारपरक शिक्षा और स्नातक हो जाने के बाद उचित रोजगार मिले।

(ii) माध्यमिक स्कूल स्तर तक माता पिता और शिक्षको की निर्वाचित संयुक्त समितिया के जरिए तथा उससे ऊपर शिक्षको, कर्मचारियो और

निर्वाचित संयुक्त समितियों के जरिए सभी शिक्षा संस्थानों के प्रबंध की प्रणाली लागू हो।

(iii) विश्वविद्यालयों को बिना सरकारी हस्तक्षेप के पूर्ण स्वायत्तता प्रदान की जाए और शिक्षा संस्थानों में पुलिस हस्तक्षेप बंद हो।

(iv) स्कूल व कॉलेज शिक्षकों को आतंकित करने और छात्रों को दंड देने का प्रावधान रखने वाले सभी नियमों को रद्द किया जाए।

(v) सभी शिक्षकों और 18 वर्ष से ऊपर छात्रों को संगठन बनाने और राजनैतिक संघ स्थापित करने का अधिकार मिले।

(vi) होस्टल, लेबोरेट्री, लाईब्रेरी, खेलों, परिवहन, सांस्कृतिक और सामाजिक गतिविधियों की पर्याप्त सुविधाएं सभी छात्रों की पहुंच के भीतर हों तथा स्कूल कॉलेजों में गरीब व जरूरतमंद छात्रों को पर्याप्त वजीफे मिलें।

प्रशासकीय सेवाएं (पुलिस सहित)

(i) उनके लिए आवश्यकता पर आधारित निर्वाह वेतन का सिद्धांत लागू हो तथा सामाजिक बीमा, भविष्यनिधि, पेंशन या ग्रेच्युटी, आवास, चिकित्सा भत्ता और दूसरी सुविधाओं का उचित प्रबंध हो।

(ii) नियुक्तियों, पदोन्नतियों और सेवा शर्तों के लिए (कर्मचारी संघों के साथ समझौते करके) उचित नियम बनें।

(iii) उन्हें राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने और सभी निर्वाचित संस्थाओं के चुनाव में खड़ा होने के अधिकार समेत सभी लोकतांत्रिक अधिकार मिलें।

सशस्त्र सेनाएं (अर्द्ध सैनिक बलों सहित)

(i) वेतन, आवास, बच्चों की पढ़ाई आदि के मामलों में सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों के रहन सहन का उचित स्तर सुनिश्चित हो तथा मारे गए या विकलांग हो गए सैनिकों के परिवारों का ध्यान रखा जाए।

(ii) सशस्त्र सेनाओं को ट्रेड यूनियन अधिकार मिलें।

बेघर लोग

बेघरों खासकर गंदी बस्तियों में रहने वाले लोगों के लिए सहकारी आवास समितियां बनें।

7 राष्ट्रीय विकल्प का सवाल

(i) यह सवाल 1947 से ही भारत की राजनैतिक कार्यसूची में पहले से चला आ रहा है। लेकिन इस पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया।

शासक दल ने इस दिशा मे 1947-उपरात हर कोशिश को राष्ट्रविरोधी करार देकर औद्योगिक युग के ससदीय लोकतत्र के बारे मे अपनी तानाशाही समझ का ही सबूत दिया है। परपरागत विपक्षी दल भी इस मामले को हर पाच साल बाद ससदीय चुनावो के मौके पर उठने वाला क्षणिक मुद्दा ही मानते आए हैं। सिर्फ एक बार यानी इमरजेंसी के बाद अथवा 1977 के ससदीय चुनाव की पूर्ववेला मे यह सवाल गभीरता से उठाया गया था। उस समय भी इस बारे म पहल जयप्रकाश नारायण ने की थी। उन्होने धमकी दी थी कि अगर गैर कम्युनिस्ट विपक्षी दलो ने अपना अलग अस्तित्व बनाए रखा तो वे तत्कालीन विपक्षी सयुक्त मोर्चे (जो तब इदिरा गाधी की तानाशाही नीतियो के खिलाफ सघर्ष कर रहा था) के नेतृत्व से अलग हो जाएगे। इस तरह वे दबाव डालकर इन दलो को एक दल म पिरोने म सफल हुए थे। नतीजा यह निकला कि काग्रेस स, जनसघ, सीएफडी, भारतीय क्राति दल और समाजवादियो के विलय से जनता पार्टी वजूद म आई।

लेकिन पीछे का मूल्याकन करते हुए अब यह कहा जा सकता है कि जनता पार्टी (जिसने लोगो म उम्मीदें जगाई) के गठन के बजाय अगर पाच पार्टियो का सयुक्त मोर्चा बनता तो वह ज्यादा बेहतर होता (क्योकि इसके टूटने के बाद लोगो म वैसी निराशा नही पैदा होती)।

(ii) क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तर पर शासक दल का विकल्प बनाने की कोशिश ज्यादा फायदेमद रही हैं। इस तरह 1967 मे सयुक्त विधायक दल की अगुआई म विपक्ष की मिली जुली सरकारें भी बनी थी। सीपीएम के प्रभुत्व वाले दो राज्यो केरल और प० बगाल मे तो सयुक्त मोर्चे का समृद्ध अनुभव रहा है।

(iii) हर परपरागत विपक्षी दल ने खुद को शासक [illegible] तौर पर ढालने की कोशिश की है। लेकिन इनमे कोई भी [illegible] लोगो मे अपनी साख कायम नही कर पाया।

(ख) (i) परपरागत विपक्षी दल अकेले या सामूहिक [illegible] राष्ट्रीय विकल्प नही बना पाए तो इसकी वजह सैद्धान्तिक [illegible] है।

(ii) सैद्धातिक तौर पर कोई भी परपरागत [illegible] साथ गठजोड बनाकर शासक काग्रेस इ के मुकाबले [illegible] लोगो का विश्वास अर्जित करने मे सफल नहीं [illegible] विरोधाभासी रुख अपनाया है। एक तरफ [illegible] बताते हैं तो दूसरी तरफ उसकी एक या [illegible] मसलन, सभी परपरागत विपक्षी दल भारतीय [illegible] हैं तथा काग्रेस की विदेशी मामलो, रक्षा और [illegible] का पूरा समर्थन करते हैं। उन्होने [illegible] प्रेस पर नकेल डालने पार्टी कामकाज [illegible] राष्ट्रविरोधी करार देने तथा सवैधानिक [illegible]

की कांग्रेसी नीतियों का बहुत कम भंडाफोड किया है। उन्होंने अमूमन कट्टरवाद और खास तौर पर बहुसंख्यक समुदाय के कट्टरवाद को तुष्ट करने की कांग्रेसी नीति (मसलन शासक दल द्वारा लगभग हर सरकारी उद्घाटन समारोह में पूजा और आरती करने) के अलावा धार्मिक एवं सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव रखने और अनुसूचित जातियों व जनजातियों का दमन करने की उसकी नीतियों का शायद ही कभी विरोध किया है। उन्होंने तो नगालैंड, मणिपुरा, त्रिपुरा, मिजोरम आदि जैसी उलझी जातीय समस्याओं को सशस्त्र दमन से हल करने की कांग्रेसी नीति की भी आलोचना नहीं की। पंजाब के नाजुक मसले को निबटाने में उन्होंने वस्तुतः गोली के बदले गोली की कांग्रेसी नीति का ही समर्थन किया है। अभी पिछले साल ही उन्होंने शासक कांग्रेस की पहल पर संयुक्त रैलियों में बरनाला को 'शेरदिल राष्ट्रवादी' घोषित किया लेकिन बरनाला की ओर से ग्रंथियों के आगे घुटने टेकने से यह बात गलत सिद्ध हुई। उन्होंने हमेशा अलोकतांत्रिक तरीकों के जरिए (चुनाव में हेराफेरी करके और नागरिक स्वतंत्रताओं को दबाकर) कश्मीर की क्षेत्रीय पहचान के मसले को निबटाने की कांग्रेसी नीति का समर्थन किया है। हर दल को अलग अलग भी परखें तो दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों का मामूली मतभेदों को छोड़कर अमूमन मानना है कि विदेशी मामलों, आर्थिक नियोजन, सार्वजनिक क्षेत्र, साम्प्रदायिकता और जातिवाद के बारे में कांग्रेस की नीतियां प्रगतिशील हैं। जनता पार्टी और लोकदल पूरी तरह गांधीवादी विचारधारा पर आधारित है। उन्हें मतभेद सिर्फ नेहरूवादी रूस समर्थक विदेश नीति और सरकारी क्षेत्र की अगुआई में आर्थिक नियोजन से है। जनमोर्चा का कांग्रेस से मतभेद महज उच्च पदों पर भ्रष्टाचार के सवाल को लेकर हैं। भाजपा अधिक मजबूत केंद्र (संविधान के अनुच्छेद 370 जैसे प्रावधानों को खत्म करके जिनके तहत एक या दूसरे समुदाय की बहुलता वाले राज्यों को कुछ रियायतें हासिल हैं) तथा अल्पसंख्यकों के प्रति तुष्टिकरण की कांग्रेसी नीति का विरोध करने के सिवा कांग्रेस से कोई मूल मतभेद नहीं रखती (उसने तो 1980 में गांधीवादी समाजवाद को भी मान लिया था लेकिन 1984 में उसे छोड़ दिया)। ध्यान देने की बात है कि ये सभी विपक्षी दल राजीव शासन के पहले दो वर्षों के दौरान सत्तारूढ़ कांग्रेस के आगे एकदम भीगी बिल्ली बने रहे। प्रधानमंत्री समेत उच्चाधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के घोटालों का पर्दाफाश होने पर ही उनमें फिर से प्राण लौटे थे। सत्तारूढ़ और सत्ता से बाहर क्षेत्रीय पार्टियां अपनी-अपनी क्षेत्रीय समस्याओं के सवाल पर कांग्रेस से मतभेद रखती हैं। उनका राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय मुद्दों से कोई ज्यादा लेना-देना नहीं है। जाहिर है कांग्रेस और विपक्षी दलों (राष्ट्रीय अथवा क्षेत्रीय) के बीच वैचारिक रूप से कोई स्पष्ट विभाजन रखा नहीं रही है जिसके आधार पर लोग कांग्रेसी और गैर कांग्रेसी सिद्धांत के बीच फर्क कर पाते।

(iii) व्यावहारिक तौर पर भी कांग्रेस और इन विपक्षी दलों के बीच कोई मूल अंतर नहीं रहा है। उन्होंने भी कांग्रेस जैसी चुनावी प्रक्रिया (जिस पर धन,

चुनाव के दौरान उन्होंने द्रमुक के साथ अपने-अपने ढंग से चुनाव गठबंधन किया। इसी तरह जनवरी से अप्रैल 1987 तक वे पंजाब में सिख मुख्यग्रंथियों के खिलाफ तत्कालीन मुख्यमंत्री सुरजीत सिंह बरनाला के 'धर्मनिरपेक्ष' रुख को समर्थन देने के लिए एक ही मंच से भाषण देते रहे। जहां तक कि जुलाई 1988 में ज्योति बसु और अटल बिहारी बाजपेयी ने कलकत्ता में वी० पी० सिंह का इलाहाबाद संसदीय चुनाव की जीत के बाद एक ही मंच से स्वागत किया। इससे पहले भी दोनों पक्षों ने अवसर निकट सहयोगी के तौर पर काम किया है। सीपीआई और जनसंघ (अब भाजपा) 1967-68 के दौरान पंजाब और बिहार की संयुक्त सरकारों में सहभागी रहे हैं जबकि सीपीएम और जनसंघ (जो जनता पार्टी का घटक था) 1977 79 में जनता शासन के दौरान करीबी मित्र थे। जाहिर है एक दूसरे के खिलाफ उनके बयान और रुख उनके मौजूदा और पिछले कामकाज के उलट है। इस तरह वे जनता को उलझाव में डालकर राजीव सरकार को हटाने के अपने मुख्य उद्देश्य' का नुकसान पहुँचाते हैं। इसके अलावा, सीपीआई और सीपीएम कभी साम्प्रदायिकता तो कभी विदेशी अस्थिरीकरण को भारत की एकता के लिए मूल खतरा बताते हैं जबकि भाजपा कभी अल्पसंख्यकों का तो कभी पाकिस्तान को भारत के लिए खतरा करार देती है। दोनों कम्युनिस्ट पार्टियां और भाजपा की यह सारी तूमतड़क अव्यवस्थित सोच के सिवा कुछ नहीं, जिसके प्रभाव में कभी वे राजीव सरकार को हटाने की व्यापक प्राथमिकता पर जोर देते हैं तो कभी अपनी अपनी पार्टियों का प्राथमिकता देने लगते हैं।

(च) दूसरे प्रमुख विपक्षी दल भी न तो अकेले-अकेले और न ही सामूहिक तौर पर मौके की पहचान कर पाए हैं। चार विपक्षी दलों—जनता, लोकदल, जन मोर्चा और कांग्रेस स की एकता प्रक्रिया भी क्षुद्र झगड़ा का मनहूस नजारा पेश करती है। हर कोई गुट नई पार्टी के नाम, झंडे, चुनावचिह्न, कार्यक्रम, संविधान, राष्ट्रीय कार्यकारिणी, संचालन समिति और संसदीय बोर्ड के गठन आदि का लेकर दूसरे से भिड़ रहा है। कांग्रेस इ का राष्ट्रीय विकल्प बनाने निकले चार घटकों में कांग्रेस-एस ने खुद का जनता दल से अलग कर लिया, लोकदल (ब) और जनमोर्चा में फूट पड़ गई जबकि जनता पार्टी चंद्रशेखर और रामकृष्ण हेगड़े के गुटों द्वारा पदों की छीना झपटी से वस्तुत दो प्रतिद्वंद्वी शिविरों में बंट गई। जनता दल के नेताओं की राजनीति का इस हद तक पतन हुआ है कि देवीलाल एक दिन चंद्रशेखर पर कांग्रेस इ का एजेंट होने का आरोप लगाते हैं और दूसरे दिन उन्हें जनता दल के एक दिग्गज नेता बताते हैं एक दिन वे अपने पार्टी अध्यक्ष बहुगुणा को ठग नटवरलाल की संज्ञा देते हैं और उन पर विपक्षी एकता को तोड़ने के लिए कांग्रेस इ से करोड़ों रुपए लेने का आरोप लगाते हैं जबकि अगले दिन पार्टी कार्यकारिणी की बैठक में उनके साथ बैठते हैं तथा राष्ट्रीय मोर्चे में अभी तक उनके सहयोगी बने हुए हैं। एक दिन चंद्रशेखर वी० पी० सिंह पर संजय गांधी का चेला, बड़ा दागी', विभीषण और राजीव गांधी सरीखे होने का आरोप लगाते हैं और अगले ही दिन उन्हें अपना नेता स्वीकार कर लेते हैं।

कभी अजीत सिंह वी० पी० सिंह पर जनता दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में अपने 'ड्राइवरों-क्लीनरों' तक को भर्ती कर लेने का आरोप लगाते हैं और अगले ही दिन प्रमुख महासचिव का पद मिलने पर तत्काल वी० पी० सिंह के सहायक बन जाते हैं, एक दिन व चन्द्रशेखर से गठजोड करते हैं तो दूसरे दिन देवीलाल से। वी० पी० सिंह की स्थिति भी ऐसी है। एक तरफ वे कांग्रेस पर तानाशाही व्यवहार का आरोप लगाते हैं तो दूसरी तरफ खुद जनता दल के तानाशाह बनकर उसकी सर्वोच्च समिति और पदाधिकारियों को नामांकित करते हैं, एक दिन मुद्दों पर आधारित राजनीति की बात करते हैं तो अगले ही दिन कार्यक्रम या नीति के किसी मुद्दे पर कोई पूर्व सहमति हुए बिना अपने जनमोर्चे का व्यक्तिगत राजनीति के आधार पर जनता दल में विलय कर देते हैं, एक दिन एक व्यक्ति एक पद के फार्मूले का प्रचार करते हैं तो अगले दिन खुद जनता दल का अध्यक्ष होने के साथ ही राष्ट्रीय मोर्चे के संयोजक भी बन जाते हैं तथा हरियाणा के मुख्यमंत्री देवीलाल को दूसरा पद देकर जनता संसदीय बोर्ड का अध्यक्ष बना देते हैं, एक दिन वे अजीत सिंह पर लोगों का विश्वासपात्र न होने का व्यंग्य कसते हैं तो दूसरे ही दिन उन्हें जनता दल का महासचिव पद दे देते हैं, एक दिन वामपंथियों को अपना स्वाभाविक दोस्त बताते हैं तो दूसरे ही दिन राज्यसभा की सीट जीतने के लिए उत्तर प्रदेश विधानसभा में भाजपा से गठजोड कर लेते हैं, एक दिन मूल्यों पर आधारित राजनीति की बातें बघारते हैं तो दूसरे ही दिन इलाहाबाद संसदीय चुनावक्षेत्र के अपने चुनाव प्रचारकों को कांग्रेस की तरह धन एवं बाहुबल का इस्तेमाल करने की अनुमति देते हैं, आरिफ खां को चुनाव मुहिम से अलग रखते हैं तथा मुसलमान वोट पाने के लिए शहाबुद्दीन और हाजी मस्तान के कट्टरवादी प्रभाव का इस्तेमाल करते हैं, एक दिन कोई सार्वजनिक पद स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा करते हैं तो अगले ही दिन लोकसभा सदस्य बनना मान जाते हैं तथा अब भारत का सर्वोच्च कार्यकारी पद पाने के लिए सभी प्रकार के समझौते कर रहे हैं। जाहिर है, जनता दल के नेता अपने अहं के टकरावों को जारी रखने में ज्यादा सक्रिय हैं और जन समस्याओं के मुकाबले अपने अपने गुटों के स्वार्थ आगे बढाने में ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। उनमें सत्ता हासिल करने के मुद्दे के सिवा किसी सिद्धांत पर आपसी सहमति नहीं है।

(छ) मौजूदा हालात के तथ्यों के मद्देनजर हमारा मत है कि पिछले चार दशकों के दौरान एकदलीय कांग्रेस शासन नाकारा सिद्ध हुआ है। दूसरे, इस समय चल रहे भ्रष्ट कांग्रेसी प्रशासन के मुकाबले सरकार में किसी भी प्रकार की तब्दीली बेहतर होगी। इससे लोगों को कम से कम कुछ रियायतें तो मिलेंगी। तीसरे, कोई भी अकेला विपक्षी दल कांग्रेस इ का विकल्प नहीं हो सकता। चौथे, सभी परंपरागत विपक्षी दलों ने मूल्यों पर आधारित राजनीति के सिद्धांतों का उल्लंघन करके धज्जियां उड़ाई है। पांचवें अगर समूचा विपक्ष न्यूनतम कार्यक्रम और नीतियों के आधार पर एक ही झंडे तले एकजुट हो जाए और हर

विपक्षी उम्मीदवार खडा करके शासक दल का सामना करे तो ऐसा विपक्षी गठजोड चाहे राष्ट्रीय मोर्चे के रूप मे हो या सघीय पार्टी के, जनहिता के अनुरूप है और भारतीय लोगो के समथन का पात्र है। छठे अगर विपक्ष वामपथी, दक्षिणपथी और मध्यमार्गियो मे बटा रहता है तथा हर चुनावक्षेत्र मे शासक दल के मुकाबले विपक्ष के विभिन्न मोर्चो के दो या अधिक उम्मीदवार मैदान म है तो जन हितो की रक्षा के लिए सही रास्ता यह है कि पार्टी सबद्धता की अनदेखी करके ऐसे उम्मीदवारो का समथन किया जाए जो ज्यादा लोकतान्त्रिक, ज्यादा धमनिरपेक्ष और सामाजिक न्याय के प्रति ज्यादा समर्पित हैं। सातवें, यह तक कि किसी अखिल भारतीय पार्टी की चुनावी जीत पर ही भारत की स्थिरता का दारोमदार है, एक भ्रामक और वबुनियाद विचार है क्याकि औद्योगिक युग मे स्थिरता मुख्यतया लोकतान्त्रिक सस्थाओ, मानदडो और ताकतो पर निभर हाती है। काग्रेस इ जसी अतिकेंद्रीकृत अथवा तानाशाही पार्टी ज्यादा देर तक लोकतान्त्रिक एकता बनाए नही रख सकती (1947 म दश विभाजन और उसके बाद बढते साप्रदायिक और जातिवादी दगे इसका स्पष्ट उदाहरण हैं)। राष्ट्रीय सेना जैसे सवशक्तिमान और देशव्यापी सगठन की अगुआई मे पाकिस्तान का मजबूत सैनिक शासन दश को दो भागो मे बाटने मे ही सहायक हुआ। वजह साफ है कि पाकिस्तान की राष्ट्रीय सेना मे तानाशाह काग्रेस इ की तरह लोकतान्त्रिक मानदडो का अभाव है। भारत मे स्थिरता निरतर काग्रेस शासन की वजह से नही (उलटे उसने अधिक स्थिरता के रास्ते मे बाधाए डाली हैं) बल्कि देश म बहुदलीय तत्र की मौजूदगी के कारण रही है जो भारत जैसे बहुसास्कृतिक, बहुभाषायी, बहुधार्मिक और बहुक्षेत्रीय देश को एकजुट रखने का समुचित आधार है। अगर आगामी चुनाव मे लोग काग्रेस की तानाशाही को रद्द करके अधिक लोकतान्त्रिक विकल्प को चुन लें तो भारत की स्थिरता ज्यादा मजबूत बनेगी। आठवें, इस समय भारत और यहा की जनता के लिए दो ही विकल्प फायदेमद हो सकते है। पहला यह कि सभी प्रमुख विपक्षी दल न्यूनतम कायक्रम और महत्वपूण नीतिया के आधार पर आपसी सहमति वाले किसी नाम के तहत एक हो जाए (चाहे वह नाम राष्ट्रीय मोर्चा ही हो)। अगर यह काम सिरे नही चढ़ता तो दूसरा विकल्प यह है कि भारतीय जनता आगामी चुनाव मे काग्रेस इ और सभी विपक्षी मोर्चों को रद्द कर दे तथा उम्मीदवारों की पार्टी सबद्धता की अनदेखी करते हुए अधिक लोकतान्त्रिक, अधिक धमनिरपेक्ष और सामाजिक न्याय के प्रति अधिक समर्पित लोगा को चुने। इस तरह के लोगो की व्यापक जीत स भारत मे एक नया राजनैतिक माहौल बनेगा। इसमे नए राजनैतिक गठजोड बनाना जरुरी हो जाएगा। जीते हुए लोग (विभिन्न दलो के बेहतर तत्व) या तो साझे कायक्रम और नीतियो के आधार पर राष्ट्रीय सयुक्त सरकार बनाएगे अथवा अधिक प्रगतिशील कायक्रमो और नीतियो के आधार पर एक तीसरी राजनैतिक ताकत के रूप मे एकजुट होग। ये दोनो ही तरीके व्यवहाय हैं और भारत के साथ साथ दुनिया के लोगो के हितो

मे हैं । नौवें, भारत की दीर्घकालिक प्रगति एक अतरराष्ट्रीयवादी लोकतांत्रिक सगठन बनाने पर निभर करती है । यही सगठन भारतीय जनता को उस विश्व लोकतांत्रिक राज्य की ओर ले जाने का उचित साधन हो सकता है जो राष्ट्र-राज्य के विकास की अगली अवस्था है और जो 21 वी सदी के पहले दशक मे भारत समेत दुनिया के लोगो के सामने प्रमुख काम भी है ।

●●●